

## Chapter ग्यारह

### भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश

सूत उवाच

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान्स्वकान् ।

दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥ १ ॥

#### शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; आनर्तान्—आनर्तान ( द्वारका ) नामक देश में; सः—वे; उपव्रज्य—निकट पहुँचकर; स्वृद्धान्—अत्यन्त समृद्ध; जन-पदान्—नगर; स्वकान्—अपना; दध्मौ—बजाया; दरवरम्—शुभ शंख ( पाञ्चजन्य ) को; तेषाम्—उनकी; विषादम्—निराशा को; शमयन्—शान्त करते हुए; इव—मानो ।

सूत गोस्वामी ने कहा : आनर्तो के देश के नाम से विख्यात अपनी अत्यन्त समृद्ध राजनगरी ( द्वारका ) के निकट पहुँच कर, भगवान् ने अपना आगमन उद्घोषित करने तथा निवासियों की निराशा को शांत करने के लिए अपना शुभ शंख बजाया ।

तात्पर्य : कुरुक्षेत्र युद्ध के कारण भगवान् अपनी समृद्ध राजनगरी द्वारका से दीर्घकाल तक बाहर रहे, जिससे नगर-निवासी उनके वियोग के कारण विषाद से अभिभूत थे। जब भगवान् पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तब उनके नित्य पार्षद भी उनके साथ आते हैं, जिस तरह राजा के साथ उसका पूरा दल चलता है। भगवान् के ऐसे पार्षद नित्यमुक्त आत्मा होते हैं और वे अत्यधिक स्नेह के कारण, क्षण भर भी, भगवान् का विछोह सहन नहीं कर पाते। इस प्रकार द्वारका नगरी के निवासी खिन्न थे और किसी भी क्षण होने वाले भगवान् के आगमन की प्रतीक्षा में थे। अतः शुभ शंख की उद्घोषक ध्वनि अत्यन्त उत्साहवर्धक थी और इस ध्वनि से उनकी खिन्नता का शमन हुआ। वे सब भगवान् को अपने बीच देखने के लिए अत्यन्त इच्छुक थे और वे सभी उनका ठीक से स्वागत करने के लिए चौकत्रे हो गये। ये भगवान् के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के लक्षण हैं।

स उच्चकाशे धवलोदरो दरो-

ऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा ।

दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे  
यथाब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥ २ ॥

### शब्दार्थ

सः—वह; उच्चकाशे—स्वच्छ हो गया; धवल-उदरः—सफेद तथा बड़े पेटवाला; दरः—शंख; अपि—यद्यपि वह ऐसा है;  
उरुकमस्य—महान् साहसी का; अधरशोण—उनके होठों के दिव्य गुण से; शोणिमा—लाल हुआ; दाध्मायमानः—बजाया  
जाकर; कर-कञ्ज-सम्पुटे—कर-कमलों की हथेली द्वारा पकड़ा जाकर; यथा—जिस तरह; अब्ज-खण्डे—कमल-दण्डों से;  
कल-हंसः—सुन्दर हंस; उत्स्वनः—जोर से शब्द करता।

श्वेत तथा मोटे पेंदेवाला शंख, भगवान् के हाथों द्वारा पकड़ा जाकर तथा उनके द्वारा बजाया जाकर, ऐसा लग रहा था मानो उनके दिव्य होठों का स्पर्श करके लाल हो गया हो। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कोई श्वेत हंस लाल रंग के कमलदण्डों के बीच खेल रहा हो।

तात्पर्य : भगवान् के होठों के स्पर्श से श्वेत शंख की लालिमा आध्यात्मिक महत्ता की सूचक है। भगवान् पूरे के पूरे आत्मा हैं और भौतिक पदार्थ इस आध्यात्मिक अस्तित्व का अज्ञान है। वस्तुतः आध्यात्मिक प्रकाश में पदार्थ नाम की कोई वस्तु नहीं है और परमेश्वर श्रीकृष्ण के स्पर्श मात्र से यह आध्यात्मिक अनुभूति तत्काल हो जाती है। भगवान् जगत के कण-कण में व्याप्त हैं और वे किसी में भी अपनी उपस्थिति प्रकट कर सकते हैं। भगवान् के प्रगाढ़ प्रेम तथा भक्तिमय सेवा से या दूसरे शब्दों में भगवान् के आध्यात्मिक स्पर्श से प्रत्येक वस्तु उसी तरह लाल हो जाती है, जिस प्रकार भगवान् के होठों में लगा शंख। परमहंस अर्थात् अत्यन्त बुद्धिमान पुरुष आध्यात्मिक आनन्दरूपी जल में कलहंस के समान है, जो भगवान् के चरणकमलों से नित्य अलंकृत होता रहता है।

तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ।  
प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥ ३ ॥

### शब्दार्थ

तम्—उस; उपश्रुत्य—सुनकर; निनदम्—शब्द को; जगत्-भय—भौतिक संसार का भय; भय-आवहम्—भयभीत बनानेवाला  
तत्त्व; प्रति—की ओर; उद्ययुः—तेजी से आगे बढ़े; प्रजाः—नागरिक; सर्वाः—सभी; भर्तृ—रक्षक; दर्शन—दर्शन की;  
लालसाः—इच्छा वाले।

भौतिक जगत में साक्षात् भय को भी भयभीत बनानेवाले, उस शब्द को सुनकर द्वारका के नागरिक उनकी ओर तेजी से दौड़ने लगे, जिससे वे भक्तों के रक्षक भगवान् का चिर अभिलषित दर्शन कर सकें।

**तात्पर्य :** जैसाकि पहले कहा जा चुका है, भगवान् कृष्ण के समय द्वारका में जो नागरिक रह रहे थे, वे सभी मुक्त जीव थे, जो भगवान् के साथ उनके पाषदों के रूप में अवतरित हुए थे। वे सभी भगवान् के दर्शन के लिए लालायित थे, यद्यपि आध्यात्मिक स्पर्श के कारण वे उनसे कभी विलग न थे। जिस प्रकार वृन्दावन की गोपियाँ भगवान् कृष्ण के गो-चारण के समय उनके गाँव से दूर जाने पर सदैव उनके विषय में सोचती रहती थीं, उसी प्रकार द्वारका के नागरिक भी द्वारका से दूर कुरुक्षेत्र युद्ध में भाग लेने के लिए गये हुए कृष्ण के विचारों में तल्लीन रहते थे। बंगाल के कुछ सुप्रसिद्ध कथा लेखकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वृन्दावन, मथुरा तथा द्वारका के कृष्ण भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इस निष्कर्ष में कोई सचाई नहीं है। कुरुक्षेत्र के कृष्ण तथा द्वारका के कृष्ण एक ही व्यक्ति हैं।

द्वारका के नागरिक दिव्य नगरी से भगवान् कृष्ण की अनुपस्थिति के कारण, उसी प्रकार शोकाकुल थे, जिस प्रकार रात्रि में सूर्य की अनुपस्थिति के कारण हम सब उद्विग्न हो उठते हैं। भगवान् कृष्ण द्वारा की गयी ध्वनि, प्रभात के समय सूर्योदय जैसी थी। अतएव द्वारका के सारे वासी निद्रा जौसी अवस्था से जाग गये, क्योंकि कृष्णरूपी सूर्य का उदय हो चुका था और वे सब उनका दर्शन पाने के लिए फुर्ती से उनकी ओर आगे बढ़े। भगवद्भक्त भगवान् के सिवा अन्य किसी को अपना रक्षक नहीं मानते।

भगवान् का यह शब्द भगवान् से अभिन्न है, जैसाकि हम भगवान् की द्वंद्वरहित स्थिति की व्याख्या करते समय बता चुके हैं। हमारी वर्तमान भौतिक स्थिति भय से ओत-प्रोत है। आहार, आश्रय, भय तथा मैथुन—भौतिक अवस्था की इन चार समस्याओं में से भय की समस्या हमें सबसे अधिक कष्ट पहुँचाने वाली है। हम अगली समस्या को न जानने के कारण सदैव भयभीत रहते हैं। यह सारा भौतिक जगत समस्याओं से भरा पड़ा है, अतएव भय की समस्या सर्व-प्रमुख रहती है। इसका कारण भगवान् की भ्रामक शक्ति के साथ हमारा सान्निध्य है, जो माया अथवा बहिरंगा शक्ति के रूप में जानी जाती है। फिर भी जैसे ही भगवान् की ध्वनि होती है—जिसका प्रतिनिधित्व उनके पवित्र नाम द्वारा किया जाता है—वैसे ही सारा भय तत्काल दूर हो जाता है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने निम्नलिखित सोलह शब्दों द्वारा इसे उच्चरित की थी :

**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।**

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

हम इन शब्दों का लाभ उठा सकते हैं और संसार की भयावह समस्याओं से उबर सकते हैं ।

तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवाहताः ।

आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ ४ ॥

प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ।

पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥ ५ ॥

### शब्दार्थ

तत्र—तत्पश्चात्; उपनीत—अर्पित करके; बलयः—भेंटें; रवेः—सूर्य तक; दीपम्—दीपक; इव—सदृश; आहताः—आदरपूर्वक; आत्म-आरामम्—आत्म-निर्भर को; पूर्ण-कामम्—पूर्णतया संतुष्ट; निज-लाभेन—अपनी निजी शक्ति से; नित्य-दा—निरन्तर पूर्ति करनेवाले; प्रीति—स्नेह; उत्फुल्ल-मुखाः—प्रसन्नमुख; प्रोचुः—कहा; हर्ष—प्रसन्न हुए; गद्गदया—आह्लादयुक्त; गिरा—वाणी; पितरम्—पिता को; सर्व—सारे; सुहृदम्—मित्रों को; अवितारम्—संरक्षक को; इव—सदृश; अर्भकाः—बालक ।

सारे नागरिक अपनी-अपनी भेंटें लिये हुए भगवान् के सम्मुख आये और उन्हें उन परम संतुष्ट तथा आत्म-निर्भर भगवान् को अर्पित किया, जो अपनी निजी शक्ति से अन्यो की आवश्यकताओं की निरन्तर पूर्ति करते रहते हैं। ये भेंटें सूर्य को दिये गये दीप-दान जैसी थीं। फिर भी सारे नागरिक भगवान् के स्वागत में ऐसी आह्लादमयी भाषा में बोलने लगे, मानो बच्चे अपने अभिभावक तथा पिता का स्वागत कर रहे हों।

तात्पर्य : परम भगवान् को यहाँ पर *आत्माराम* कहा गया है। वे आत्म-निर्भर हैं और उन्हें अपने से आगे अन्यत्र सुख की खोज करने की आवश्यकता नहीं है। वे आत्मनिर्भर हैं, क्योंकि उनका दिव्य अस्तित्व ही पूर्ण आनन्दमय है। वे शाश्वत विद्यमान हैं; वे सर्वज्ञ हैं और सर्व-आनन्दमय हैं। अतएव, उन्हें किसी भेंट की आवश्यकता नहीं है, चाहे वह कितनी भी मूल्यवान क्यों न हो। फिर भी वे सबों के शुभचिन्तक हैं, अतः यदि शुद्ध भक्तिमय सेवा में कोई उन्हें कुछ अर्पित करता है, तो वे उसे स्वीकार कर लेते हैं। ऐसा नहीं है कि उन्हें ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता है, क्योंकि वस्तुएँ स्वयं उनकी ही शक्ति द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। यहाँ पर उपमा दी गई है कि भगवान् को भेंट की जाने वाली वस्तुएँ सूर्यदेव की पूजा हेतु दीप-दान जैसी हैं। जो भी वस्तु प्रज्वलित एवं प्रकाशमय होती है, वह सूर्य की शक्ति का उद्भवन है, तो भी सूर्यदेव की पूजा करने के लिए दीप-दान आवश्यक है। सूर्य की पूजा

करते समय पूजा करनेवाला उनसे कुछ न कुछ माँग करता है, लेकिन भगवान् की भक्ति करने पर दोनों ओर से कोई माँग किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तो भगवान् और भक्त के बीच शुद्ध प्रेम तथा स्नेह का प्रतीक है।

भगवान् सभी जीवों के परम पिता हैं, अतएव जो लोग भगवान् के साथ इस जीवन्त सम्बन्ध से अवगत हैं, वे पिता से पुत्र की तरह माँग कर सकते हैं और पिता भी अपने आज्ञाकारी पुत्रों की माँग पूरी करते हुए बिना किसी सौदेबाजी के प्रसन्नता का अनुभव करता है। भगवान् कल्पवृक्ष के तुल्य हैं और उनसे कोई भी व्यक्ति उनकी अहैतुकी कृपा से कुछ भी प्राप्त कर सकता है। किन्तु परम पिता होने के कारण, भगवान् अपने शुद्ध भक्तों को कोई ऐसी वस्तु नहीं देत, जो भक्ति के मार्ग में बाधक हो। जो लोग भगवान् की भक्तिमय सेवा में लगे हैं, वे उनके दिव्य आकर्षण के द्वारा अनन्य भक्ति के पद तक उन्नति कर सकते हैं।

नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं  
विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।  
परायणं क्षेममिहेच्छतां परं  
न यत्र कालः प्रभवेत् परः प्रभुः ॥ ६ ॥

### शब्दार्थ

नताः स्म—हम नतमस्तक हुए थे; ते—आपके समक्ष; नाथ—हे भगवान्; सदा—सदैव; अङ्घ्रि-पङ्कजम्—चरणकमल;  
विरिञ्च—ब्रह्मा, प्रथम जीव; वैरिञ्च्य—ब्रह्मा के पुत्र, यथा सनक तथा सनातन; सुर-इन्द्र—स्वर्ग का राजा; वन्दितम्—पूजित;  
परायणम्—सर्वोपरि; क्षेमम्—कुशल, कल्याण; इह—इस जीवन में; इच्छताम्—इच्छा करनेवाला; परम्—सर्वोच्च; न—कभी नहीं; यत्र—जहाँ; कालः—प्रबल काल; प्रभवेत्—अपना प्रभाव डाल सकता है; परः—दिव्य; प्रभुः—परमेश्वर।

नागरिकों ने कहा : हे भगवन्, आप ब्रह्मा, चारों कुमार तथा स्वर्ग के राजा जैसे समस्त देवताओं द्वारा भी पूजित हैं। आप उन लोगों के परम आश्रय हैं, जो जीवन का सर्वोच्च लाभ उठाने के लिए इच्छुक हैं। आप परम दिव्य भगवान् हैं और प्रबल काल भी आप पर अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता।

तात्पर्य : भगवद्गीता, ब्रह्म-संहिता तथा अन्य प्रामाणिक वैदिक साहित्य से इस बात की पुष्टि होती है कि श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर हैं। न तो कोई उनके समान है, न ही कोई उनसे बढ़कर है और यही सारे शास्त्रों का निर्णय है। सारे जीव जो परमेश्वर के अंशस्वरूप हैं और उन पर आश्रित हैं, उन पर

देश-काल का प्रभाव पड़ता है। सारे जीव अधीनस्थ-ब्रह्म हैं और परमेश्वर परम अधिष्ठता हैं। जैसे ही इस सुस्पष्ट तथ्य को भूल जाते हैं, हम तत्काल मोहग्रस्त हो जाते हैं और तीनों तापों से उसी तरह ग्रस्त हो जाते हैं, जिस प्रकार किसी को सघन अंधकार में रखा गया हो। सजग जीव की विमल चेतना ईश-चेतना है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य सदैव नतमस्तक हो जाता है।

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन  
त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ।  
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं  
यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥ ७ ॥

### शब्दार्थ

भवाय—कल्याण के लिए; नः—हम सबों के; त्वम्—आप; भव—बनें; विश्व-भावन—ब्रह्माण्ड के स्रष्टा; त्वम्—आप; एव—निश्चय ही; माता—माता; अथ—तथा; सुहृत्—शुभचिन्तक; पतिः—पति; पिता—पिता; त्वम्—आप; सत्-गुरुः—गुरु; नः—हमारे; परमम्—परम; च—तथा; दैवतम्—पूज्य देव; यस्य—जिसके; अनुवृत्त्या—चरणचिह्नों पर चलकर; कृतिनः—सफल; बभूविम—हम हुए हैं।

हे ब्रह्माण्ड के स्रष्टा, आप हमारे माता, शुभचिन्तक, प्रभु, पिता, आध्यात्मिक गुरु तथा आराध्य देव हैं। हम आपके चरण-चिह्नों पर चलते हुए सभी प्रकार से सफल हुए हैं। अतएव हमारी प्रार्थना है कि आप हमें अपनी कृपा का आशीर्वाद देते रहें।

तात्पर्य : ब्रह्माण्ड के स्रष्टा होने के कारण, सबका कल्याण करनेवाले भगवान्, समस्त उत्तम जीवों के कल्याण की भी योजना बनाते हैं। भगवान् इन उत्तम जीवों को आदेश देते हैं कि वे उनके सदुपदेशों का पालन करें। ऐसा करने से वे जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता पाते हैं। भगवान् को छोड़कर किसी अन्य देव की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है। भगवान् सर्वशक्तिमान हैं और यदि वे अपने चरणकमलों के प्रति हमारी आज्ञाकारिता से प्रसन्न हो जाएँ, तो वे हमें सभी प्रकार के आशीर्वाद दे सकने में समक्ष हैं, जिनसे हमारे भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों जीवन सफल हो जाते हैं। आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि के लिए मनुष्य जीवन ही वह अवसर है, जिसमें ईश्वर के साथ अपने नित्य सम्बन्ध को समझा जा सकता है। उनसे हमारा सम्बन्ध सनातन है; न तो इसको तोड़ा जा सकता है, न विनष्ट किया जा सकता है। भले ही कुछ काल के लिए इसे भुला दिया जाय, लेकिन भगवत्कृपा

से उसे पुनः जागृत किया जा सकता है, यदि हम देश-काल के अनुसार सभी शास्त्रों में दिये गये उनके आदेशों का पालन करें।

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं  
त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।  
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं  
पश्येम रूपं तव सर्वसौभागम् ॥ ८ ॥

### शब्दार्थ

अहो—ओह, यह तो हमारा सौभाग्य है; स-नाथा:—स्वामी के संरक्षण में होना; भवता—आपके द्वारा; स्म—जैसे हम बन चुके हैं; यत् वयम्—जैसे कि हम हैं; त्रैविष्ट-पानाम्—देवताओं को; अपि—भी; दूर-दर्शनम्—बहुत कम दिखाई पड़ते हैं; प्रेम-स्मित—प्रेम से हँसता हुआ; स्निग्ध—स्नेहपूर्ण; निरीक्षण-आननम्—उस प्रकार से दिखनेवाला मुख; पश्येम—देखें; रूपम्—सौन्दर्य; तव—आपका; सर्व—सम्पूर्ण; सौभागम्—सौभाग्य।

अहो! यह तो हमारा सौभाग्य है कि आज पुनः आपकी उपस्थिति से हम आपके संरक्षण में आ गये, क्योंकि आप स्वर्ग के निवासियों के यहाँ भी कभी-कभी जाते हैं। आपके स्मितमुख को देख पाना हमारे लिए अब सम्भव हो सका है, जो स्निग्ध चितवन से पूर्ण है। अब हम आपके सर्व-सौभाग्यशाली दिव्य रूप का दर्शन कर सकते हैं।

तात्पर्य : केवल शुद्ध भक्त ही भगवान् के नित्य साकार रूप का दर्शन कर सकते हैं। भगवान् कभी भी निराकार नहीं होते, अपितु वे भगवान् के सर्वोपरि परिपूर्ण व्यक्तित्व हैं, जिन्हें भक्तिमय सेवा के द्वारा साक्षात् देखा जा सकता है और जो स्वर्ग के निवासियों के लिए भी दुर्लभ हैं। जब ब्रह्माजी तथा अन्य देवता भगवान् कृष्ण के पूर्ण अंश भगवान् विष्णु से परामर्श लेना चाहते हैं, तो उन्हें क्षीरसागर के तट पर जाकर प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जहाँ भगवान् विष्णु श्वेतद्वीप में शयन कर रहे होते हैं। यह क्षीरसागर तथा श्वेतद्वीप ग्रह इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत वैकुण्ठलोक की प्रतिकृतियाँ हैं। इस श्वेतद्वीप में न तो ब्रह्माजी, न ही इन्द्र जैसे देवता प्रवेश कर सकते हैं, अपितु उन्हें क्षीरसागर के तट पर खड़े होकर क्षीरोदकशायी विष्णु को अपना सन्देश संप्रेषित करना होता है। अतएव उन्हें यदा-कदा ही भगवान् के दर्शन हो पाते हैं, लेकिन द्वारका के निवासी किसी प्रकार के सकाम कर्म तथा दार्शनिक चिन्तन के भौतिक कल्मष से रहित शुद्ध भक्त होने के कारण भगवत्कृपा से उनका साक्षात् दर्शन कर

सकते हैं। यह जीवों की असली स्थिति है और भक्तिमय सेवा के द्वारा अपनी स्वाभाविक तथा आध्यात्मिक जीवन दशा को जागृत करके प्राप्त की जा सकती है।

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्  
 कुरुन् मधून् वाथ सुहृद्विदक्षया ।  
 तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्  
 रविं विनाक्षणोरिव नस्तवाच्युत ॥ ९ ॥

### शब्दार्थ

यर्हि—जब भी; अम्बुज-अक्ष—हे कमलनेत्र; अपससार—आप चले जाते हैं; भो—अरे; भवान्—आप; कुरुन्—राजा कुरु के वंशजों को; मधून्—मथुरा ( व्रजभूमि ) के निवासियों को; वा—अथवा; अथ—अतएव; सुहृत्-दिदक्षया—भेंट करने के लिए; तत्र—उस समय; अब्द-कोटि—करोड़ों वर्ष; प्रतिमः—सदृश; क्षणः—क्षण; भवेत्—हो जाता है; रविम्—सूर्य; विना—रहित; अक्षणोः—आँखों के; इव—समान; नः—हमारी; तव—आपकी; अच्युत—हे अमोघ।

हे कमलनयन भगवान्, आप जब भी अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से भेंट करने मथुरा, वृन्दावन या हस्तिनापुर चले जाते हैं, तो आपकी अनुपस्थिति में प्रत्येक क्षण हमें करोड़ों वर्षों के समान प्रतीत होता है। हे अच्युत, उस समय हमारी आँखें इस तरह व्यर्थ हो जाती हैं मानो सूर्य से बिछुड़ गई हों।

तात्पर्य : हमें अपनी इन्द्रियों पर गर्व है कि हम ईश्वर का अस्तित्व निश्चित करने के लिए उनका प्रयोग करते हैं। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ अपने आप में पूर्ण नहीं हैं। वे कुछ परिस्थितियों में ही कार्य कर सकती हैं। उदाहरण के लिए हमारी आँखों को लीजिए। जब तक सूर्य का प्रकाश होता है, हमारी आँखें कुछ सीमा तक उपयोगी होती हैं। लेकिन सूर्य-प्रकाश के अभाव में आँखें व्यर्थ हो जाती हैं। आदि भगवान्, परम सत्य होने के कारण, श्रीकृष्ण की तुलना सूर्य से की गई है। उनके बिना हमारा सारा ज्ञान या तो असत्य है अथवा अधूरा है। जिस तरह सूर्य का विलोम (दूसरा पक्ष) अंधकार है, इसी प्रकार कृष्ण का विलोम माया है। कृष्ण द्वारा विकीर्ण प्रकाश से भक्तगण सारी वस्तुओं को उनके सही परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं। भगवत्कृपा से शुद्ध भक्त कभी अज्ञान के अंधकार में नहीं रहते। इसलिए यह आवश्यक है कि हम सदा भगवान् कृष्ण की दृष्टि के समक्ष रहें, जिससे हम अपने आपको तथा विभिन्न शक्तियों समेत भगवान् को भी देख सकें। जिस प्रकार सूर्य के अभाव में



हम कुछ भी नहीं देख सकते, उसी प्रकार भगवान् की वास्तविक उपस्थिति के बिना हम कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि अपने आपको भी नहीं देख सकते। उनके बिना हमारा सारा ज्ञान माया से ठक जाता है।

कथं वयं नाथ चिरोषिते त्वयि  
 प्रसन्नदृष्ट्याखिलतापशोषणम् ।  
 जीवेम ते सुन्दरहासशोभित-  
 मपश्यमाना वदनं मनोहरम् ।  
 इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ।  
 शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत् पुरम् ॥ १० ॥

### शब्दार्थ

कथम्—कैसे; वयम्—हम; नाथ—हे प्रभु; चिरोषिते—सदैव बाहर रहने के कारण; त्वयि—आपके द्वारा; प्रसन्न—प्रसन्नता; दृष्ट्या—झलक से; अखिल—संसार भर का; ताप—दुख; शोषणम्—नष्ट करने के लिए; जीवेम—जीवित रह सकें; ते—आपका; सुन्दर—सुन्दर; हास—हँसता हुआ; शोभितम्—अलंकृत; अपश्यमानाः—बिना देखे; वदनम्—मुख; मनोहरम्—आकर्षक; इति—इस प्रकार; च—तथा; उदीरिताः—बोलते हुए; वाचः—शब्द; प्रजानाम्—नागरिकों का; भक्त-वत्सलः—भक्तों के प्रति दयालु; शृण्वानः—ऐसा जानकर; अनुग्रहम्—दया; दृष्ट्या—चितवन से; वितन्वन्—वितरित करते हुए; प्राविशत्—प्रवेश किया; पुरम्—द्वारका में।

हे स्वामी, यदि आप सारे समय बाहर रहते हैं, तो हम आपके उस मनोहर मुखमण्डल को नहीं देख पाते, जिसकी मुसकान हमारे सारे कष्टों को दूर कर देती है। भला हम आपके बिना कैसे रह सकते हैं?

उनकी वाणी सुनकर, प्रजा तथा भक्तों पर अत्यन्त दयालु भगवान् ने द्वारकापुरी में प्रवेश किया और उन सबों पर अपनी दिव्य दृष्टि डालते हुए उनका अभिनन्दन स्वीकार किया।

तात्पर्य : कृष्ण का आकर्षण इतना प्रबल होता है कि एक बार उनसे आकृष्ट हो जाने पर, उनका विछोह सह पाना कठिन हो जाता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि हम उनसे उसी तरह शाश्वत रूप से सम्बन्धित हैं, जिस प्रकार सूर्य की किरणें सूर्य-मण्डल से सम्बन्धित होती हैं। सूर्य की किरणें सौर विकिरण के आण्विक अंश हैं। इस तरह सूर्य तथा सूर्यप्रकाश को विलग नहीं किया जा सकता। बादलों द्वारा उनका विलगाव क्षणिक तथा कृत्रिम होता है और ज्योंही बादल हट जाते हैं, त्योंही सूर्य की किरणें सूर्य की उपस्थिति में अपना सहज तेज बिखेरने लगती हैं। इसी प्रकार, सारे जीव जो पूर्ण आत्मा के सूक्ष्मांश हैं, वे भ्रामक शक्ति माया के कृत्रिम आवरण के कारण भगवान् से विलग हैं। भ्रामक

शक्ति माया के इस आवरण को हटाना है और ऐसा हो जाने पर, जीव भगवान् को साक्षात् देख सकते हैं और उनके सारे कष्ट तुरन्त ही दूर हो जाएँगे। हममें से प्रत्येक व्यक्ति जीवन के कष्टों को हटाना चाहता है, लेकिन हम जानते नहीं कि इन्हें किस प्रकार हटाया जाय। यहाँ पर इसका समाधान दिया गया है और यह हम पर निर्भर करता है कि हम इसे आत्मसात् करें अथवा नहीं।

मधुभोजदशार्हाहकुकुरान्धकवृष्णिभिः ।

आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥

### शब्दार्थ

मधु—मधु; भोज—भोज; दशार्ह—दशार्ह; अर्ह—अर्ह; कुकुर—कुकुर; अन्धक—अन्धक; वृष्णिभिः—वृष्णि-कुलवालों के द्वारा; आत्म-तुल्य—अपने सदृश; बलैः—शक्ति से; गुप्ताम्—रक्षित; नागैः—नागों द्वारा; भोगवतीम्—नागलोक की राजधानी; इव—सदृश।

जिस प्रकार नागलोक की राजधानी भोगवती नागों के द्वारा रक्षित है, उसी तरह द्वारका की रक्षा कृष्ण के समान बलवान वृष्णि के वंशजों—भोज, मधु, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक इत्यादि—द्वारा की जाती थी।

तात्पर्य : नागलोक पृथ्वीलोक के नीचे स्थित है और ऐसा समझा जाता है कि यहाँ सूर्य की किरणें नहीं पहुँच पातीं। लेकिन उस लोक का अंधकार नागों (स्वर्गिक सर्पों) के शिरों पर स्थित मणियों के प्रकाश से दूर होता है। यह भी कहा जाता है कि, वहाँ पर नागों के भोग-विलास के लिए सुन्दर उद्यान, सरोवर आदि हैं। यहाँ पर यह भी कहा गया है कि यह स्थान नागरिकों द्वारा अच्छी तरह सुरक्षित है। उसी प्रकार से द्वारकापुरी भी वृष्णि-वंशियों द्वारा सुरक्षित थी, जो भगवान् कृष्ण के ही समान शक्तिशाली थे, जहाँ तक इस धरती पर उनके शक्ति-प्रदर्शन का सम्बन्ध था।

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ।

उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥ १२ ॥

### शब्दार्थ

सर्व—सभी; ऋतु—ऋतुएँ; सर्व—समस्त; विभव—ऐश्वर्य; पुण्य—पवित्र; वृक्ष—पेड़; लता—बेलें; आश्रमैः—आश्रमों के साथ; उद्यान—बगीचे; उपवन—पुष्पोद्यान; आरामैः—क्रीडावन (आरामदायक बगीचे) तथा सुन्दर पार्क से; वृत—घिरे हुए; पद्म-आकर—कमलों के जन्म-स्थल या जल के सुन्दर आगार; श्रियम्—सुन्दरता को बढ़ानेवाले।

द्वारकापुरी समस्त ऋतुओं के ऐश्वर्य से पूर्ण थी। उसमें सर्वत्र आश्रम, उद्यान, पुष्पोद्यान, पार्क तथा कमलों से परिपूर्ण जलाशय थे।

तात्पर्य : मानव सभ्यता की पूर्णता प्रकृति के वरदानों का सदुपयोग उनके सहज रूप में करने से सम्भव बनाई जा सकती है। जैसाकि द्वारका के ऐश्वर्य के वर्णन से प्रकट है, उसके चारों ओर पुष्पोद्यान तथा फलों के बगीचे थे और जलाशय थे, जो कमलों से परिपूर्ण थे। यहाँ पर किसी मिल तथा कसाईघर के बल पर चलने वाली फैक्टरी का उल्लेख नहीं है, जो आधुनिक महानगरों के लिए आवश्यक साज-सामग्री है। फिर भी, आधुनिक सुसंस्कृत मनुष्य के अन्तःकरण में भी प्रकृति के वरदानों का उपयोग करने की रुचि बरकरार है। आधुनिक सभ्यता के अग्रणी अपने निजी आवासों को ऐसे स्थानों में बनाते हैं, जहाँ सुन्दर बगीचे तथा जलाशय हों, लेकिन सामान्य व्यक्तियों को वे पार्कों तथा बगीचों से रहित दमघोटू स्थानों में रहने के लिए छोड़ देते हैं। लेकिन यहाँ पर हमें द्वारकापुरी का सर्वथा भिन्न वर्णन प्राप्त होता है। ऐसा लगता है कि सारा धाम ऐसे उद्यानों तथा पार्कों एवं कमलों से परिपूर्ण जलाशयों द्वारा घिरा हुआ था। ऐसा लगता है कि सारे लोग प्रकृति द्वारा प्रदत्त फूलों तथा फलों पर निर्भर थे और वहाँ ऐसे उद्योग नहीं थे, जो गन्दी बस्ती तथा झुग्गी-झोपड़ियाँ बढ़ावा देते हैं। सभ्यता की प्रगति का अनुमान उन मिलों तथा फैक्ट्रियों की बढ़ोत्तरी से नहीं लगाया जाता, जिनसे मनुष्य की कोमल भावनाएँ विनष्ट हों, अपितु मनुष्यों में प्रबल आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के विकास से लगाया जाता है, जिससे उन्हें भगवद्धाम वापस जाने का अवसर प्राप्त हो सके। फैक्ट्रियों तथा मिलों का विकास उग्रकर्म कहलाता है और ऐसे कर्म से मनुष्य तथा समाज की सुकोमल भावनाओं का क्षय होकर असुरों का कारागार बना देती हैं।

यहाँ पर हम पवित्र वृक्षों का उल्लेख पाते हैं, जिनमें ऋतु के अनुसार फूल-फल लगते हैं। अपवित्र वृक्ष केवल व्यर्थ के जंगल होते हैं और उनका उपयोग केवल ईंधन के लिए हो सकता है। आधुनिक सभ्यता में ऐसे अपवित्र वृक्षों को सड़क के दोनों किनारों पर रोपा जाता है। मानव शक्ति का सदुपयोग सुकोमल भावनाओं के विकास के लिए होना चाहिए, जिससे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो सके और इसी में जीवन का समाधान प्राप्त होता है। मनुष्य के शरीर में सूक्ष्म तन्तुओं के विकास के लिए फल, फूल, सुन्दर उद्यान, पार्क, कमलों के बीच क्रीड़ा करते बतख एवं हंसों से युक्त जलाशय तथा

प्रचुर दूध तथा मक्खन देनेवाली गाएँ आवश्यक हैं। इसके विपरीत, कारागार तुल्य खानें, फैक्टरियाँ तथा कार्यशालाएँ श्रमिक वर्ग में आसुरी प्रवृत्तियों को जन्म देती हैं। श्रमिक वर्ग के बल पर ही शोषण को प्रश्रय मिलता है, फलस्वरूप उनमें अनेक प्रकार के उग्र संघर्ष होते रहते हैं। द्वारकाधाम का वर्णन मानवीय सभ्यता के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ।

चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तः प्रतिहतातपाम् ॥ १३ ॥

### शब्दार्थ

गोपुर—नगरी का सिंहद्वार; द्वार—दरवाजा; मार्गेषु—विभिन्न सड़कों पर; कृत—किये गये; कौतुक—उत्सव के कारण; तोरणाम्—सजित बन्दन-वार; चित्र—चित्रित; ध्वज—झंडियाँ; पताका-अग्रैः—अग्रणी चिह्नों द्वारा; अन्तः—भीतर; प्रतिहत—अवरुद्ध; आतपाम्—धूप को।

भगवान् के स्वागतार्थ नगर का द्वार, घरों के दरवाजे तथा सड़कों के किनारे झंडियों से सजे बन्दनवार बहुत ही सुन्दर ढंग से केले के वृक्षों तथा आम की पत्तियों जैसे मांगलिक प्रतीकों से सजाये गये थे। झंडियाँ, फूल-मालाएँ तथा चित्रित संकेत एवं लिखे गये सुवाक्य धूप को अवरुद्ध कर रहे थे।

तात्पर्य : विशेष उत्सवों की सजावट के लिए प्रतीक भी प्रकृति के उपहारों से—केले के वृक्षों, आम की वृक्षों, फूलों तथा फलों से लिए गए थे। आज भी आम्रवृक्ष, नारियल तथा कदली वृक्षों को मांगलिक प्रतीक माना जाता है। ऊपर जिन झंडियों का उल्लेख हुआ है, उन सभी में भगवान् के इन दो महान् सेवक गरुड़ अथवा हनुमान के चित्र अंकित थे। अब भी ऐसे चित्र तथा अलंकरण भक्तों द्वारा पूजित हैं और भगवान् की तुष्टि के लिए सेवक को अधिक सम्मान प्रदान किया जाता है।

सम्मार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ।

सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ॥ १४ ॥

### शब्दार्थ

सम्मार्जित—पूर्णतया स्वच्छ किया; महा-मार्ग—राजपथ; रथ्य—मार्ग तथा गलियाँ; आपणक—बाजार; चत्वराम्—चौक; सिक्ताम्—सिक्त; गन्ध-जलैः—सुगन्धित जल से; उप्ताम्—बिखरे हुए; फल—फल; पुष्प—फूल; अक्षत—बिना टूटे, पूरे-पूरे; अङ्कुरैः—बीजों से।

पथ, मार्गों, बाजारों तथा चौकों को भलीभाँति झाड़-बुहारकर उन पर सुगन्धित जल छिड़का गया था और भगवान् का स्वागत करने के लिए सर्वत्र फल-फूल तथा अक्षत-अंकुर बिखरे गये थे।

तात्पर्य : द्वारकाधाम के राजमार्गों तथा गली-कूचों को सिक्त करने के लिए गुलाब तथा केवड़ा के फूलों को आसवित करके तैयार किया गया सुगन्धित जल मँगवाया गया था। इनके उपरान्त बाजारों तथा चौकों को भलीभाँति झाड़ा-बुहारा गया था। उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि द्वारकाधाम बहुत बड़ा था, जिसमें अनेक राजमार्गों, गलियों तथा पार्कों, उद्यानों एवं जलाशयों से युक्त चौक थे और इन सबों को फूलों-फलों से सुन्दर ढंग से सजाया गया था। भगवान् का स्वागत करने के लिए इन फूलों-फलों को अक्षत-अंकुरों के साथ सार्वजनिक स्थलों पर बिखेर दिया गया था। अक्षत बीज व अंकुर शुभ माने जाते थे और उत्सवों के दिनों में हिन्दू लोग आज भी इनका प्रयोग करते हैं।

द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ।  
अलङ्कृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥

### शब्दार्थ

द्वारि द्वारि—प्रत्येक घर के द्वार पर; गृहाणाम्—सभी घरों के; च—तथा; दधि—दही; अक्षत—सम्पूर्ण; फल—फल; इक्षुभिः—गन्ने से; अलङ्कृताम्—सजाया गया; पूर्ण-कुम्भैः—जल से पूर्ण घटों से; बलिभिः—पूजन सामग्री सहित; धूप—सुगन्ध बत्ती; दीपकैः—दीपों तथा बत्तियों से।

प्रत्येक घर के द्वार पर दही, अक्षत फल, गन्ना तथा पूरे भरे हुए जलपात्रों के साथ ही पूजन की सामग्री, धूप तथा बत्तियाँ सजा दी गयी थीं।

तात्पर्य : वैदिक प्रथा के अनुसार, स्वागत-विधि शुष्क नहीं होती है। जैसाकि ऊपर उल्लेख है, स्वागत के लिए केवल राजमार्ग तथा गली-कूचे ही नहीं सजाये गये थे, अपितु अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार आवश्यक वस्तुओं जैसे धूप-दीप, फूल, मिठाई तथा स्वादिष्ट खाद्यों द्वारा भगवान् की पूजा भी की गई थी। ये सभी वस्तुएँ भगवान् को अर्पित की गईं और वहाँ पर एकत्र नागरिकों में प्रसाद वितरित किया गया। अतएव यह आज के शुष्क स्वागत जैसा न था। प्रत्येक घर भगवान् का ऐसा स्वागत करने के लिए प्रस्तुत था, अतएव राजमार्गों तथा गली-कूचों के घर-घर में ऐसा प्रसाद नागरिकों को बाँटा

गया और यह समारोह सफल रहा। प्रसाद-वितरण के बिना कोई भी उत्सव पूरा नहीं होता और यही वैदिक संस्कृति की शैली है।

निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः ।  
 अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ १६ ॥  
 प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ।  
 प्रहर्षवेगोच्छशितशयनासनभोजनाः ॥ १७ ॥

### शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; प्रेष्ठम्—प्रियतम को; आयान्तम्—घर आते हुए; वसुदेवः—वसुदेव ( कृष्ण के पिता ); महा-मनाः—महामना, उदारचेता; अक्रूरः—अक्रूर; च—तथा; उग्रसेनः—उग्रसेन; च—तथा; रामः—बलराम ( कृष्ण के बड़े भाई ); च—तथा; अद्भुत—अलौकिक; विक्रमः—शौर्य, पराक्रम; प्रद्युम्नः—प्रद्युम्न; चारुदेष्णः—चारुदेष्ण; च—तथा; साम्बः—साम्ब; जाम्बवती-सुतः—जाम्बवती का पुत्र; प्रहर्ष—अत्यन्त प्रसन्नता; वेग—त्वरा; उच्छशित—से प्रभावित; शयन—लेटना; आसन—बैठना; भोजनाः—भोजन करना ।

यह सुनकर कि परम प्रिय कृष्ण द्वारकाधाम पहुँच रहे हैं, महामना वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, बलराम ( अलौकिक शक्तिसम्पन्न ), प्रद्युम्न, चारुदेष्ण तथा जाम्बवती-पुत्र साम्ब सभी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने लेटना, बैठना तथा भोजन करना छोड़ दिया।

तात्पर्य : वसुदेव—राजा शूरसेन के पुत्र, देवकी के पति तथा श्रीकृष्ण के पिता। ये कुन्ती के भाई तथा सुभद्रा के पिता थे। सुभद्रा अपने ममेरे भाई अर्जुन को ब्याही गई थी और यह प्रथा आज भी भारत के कुछ भागों में प्रचलित है। वसुदेव को राजा उग्रसेन के मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में उन्होंने उग्रसेन के भाई देवक की आठ कन्याओं के साथ विवाह किया। देवकी उनमें से एक थी। कंस उनका साला था और वसुदेव ने स्वेच्छा से, कंस का बन्दी बनना इस शर्तपर स्वीकार किया कि वे देवकी का आठवाँ पुत्र उसे दे देंगे। लेकिन कृष्ण की इच्छा से यह विफल रहा। पाण्डवों के मातुल के रूप में उन्होंने पाण्डवों के समस्त संस्कारों में सक्रिय भाग लिया। उन्होंने शतश्रृंग पर्वत पर कश्यप पुरोहित को बुलवाया और सारे कृत्य सम्पन्न करवाये। कृष्ण जब कंस के बन्दीगृह के भीतर प्रकट हुए, तो वसुदेव ने उन्हें कृष्ण के पालक पिता, नन्द महाराज के घर गोकुल पहुँचाया। वसुदेव का तिरोधान होने के पूर्व, कृष्ण बलदेव-सहित अन्तर्धान हो गये और वसुदेव के तिरोधान के बाद अर्जुन (वसुदेव के भांजे) ने उनका दाह संस्कार किया।

अक्रूर—वृष्णि कुल के सेनापति तथा भगवान् कृष्ण के महान् भक्त। उन्होंने एक-मात्र स्तुति की एकाकी विधि द्वारा भगवद्भक्ति में सफलता प्राप्त की। वे अहूक की पुत्री सूतनी के पति थे। जब अर्जुन कृष्ण की इच्छानुसार सुभद्रा का हरण करके ले गये, तो उन्होंने अर्जुन की सहायता की थी। सुभद्रा का सफलतापूर्वक हरण होने के बाद, कृष्ण तथा अक्रूर दोनों ही उसे मिलने गये और इस घटना के बाद अर्जुन को दहेज दिया। सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु का जब महाराज परीक्षित की माता, उत्तरा के साथ विवाह हो रहा था, तब भी अक्रूर उपस्थित थे। अक्रूर के श्वसुर अहूक की उनसे नहीं बनती थी। किन्तु दोनों ही भगवान् के भक्त थे।

उग्रसेन—वृष्णि कुल के सर्वाधिक पराक्रमी राजाओं में से एक और महाराज कुन्तिभोज के चचेरे भाई। इनका दूसरा नाम अहूक था। वसुदेव इनके मंत्री थे और शक्तिशाली कंस इनका पुत्र था। इसी कंस ने अपने पिता को बन्दी बनाया और स्वयं मथुरा का राजा बन गया। भगवान् कृष्ण तथा उनके भाई भगवान् बलराम की कृपा से कंस मारा गया और उग्रसेन पुनः राज्य-सिंहासन पर बैठाये गये। जब शाल्व ने द्वारकापुरी पर आक्रमण कर दिया, तो उग्रसेन वीरता से लड़े और उन्होंने शत्रु को पीछे हटा दिया। उग्रसेन ने नारदजी से भगवान् श्रीकृष्ण की अलौकिकता के विषय में जिज्ञासा की थी। जब यदुवंश का विनाश होना था, तो उग्रसेन को साम्ब के गर्भ से उत्पन्न लोह-पिण्ड सौंपा गया था। इन्होंने लोह-पिण्ड को खण्ड-खण्ड करके इसको घिस घिस कर, द्वारका के समुद्रतट पर समुद्रजल में मिला दिया था। तत्पश्चात् उन्होंने द्वारकापुरी के भीतर तथा राज्य में, मद्यपान की पूर्ण मनाही कर दी थी। मृत्यु के पश्चात् उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ था।

बलदेव—ये वसुदेव की पत्नी रोहिणी के गर्भ से प्रकट हुए, अलौकिक पुत्र थे। इन्हें रोहिणी-नन्दन अर्थात् रोहिणी के प्रिय पुत्र भी कहा जाता है। जब वसुदेव ने कंस से पारस्परिक समझौता करके कारावास स्वीकार कर लिया था, तब बलराम को रोहिणी समेत नन्द महाराज को सौंप दिया गया था। अतएव नन्द महाराज बलदेव तथा भगवान् कृष्ण दोनों के पालक पिता थे। सौतेले भाई होते हुए भी कृष्ण तथा बलराम बचपन से ही निरन्तर एकसाथ ही रहते थे। वे भगवान् कृष्ण के स्वांश हैं, अतएव वे कृष्ण के ही समान उत्तम तथा शक्तिमान हैं। वे विष्णु-तत्त्व (ईश्वर तत्त्व) की श्रेणी में हैं। वे कृष्ण के साथ द्रौपदी के स्वयंवर में गये थे। जब श्रीकृष्ण की सुनियोजित योजना से अर्जुन द्वारा सुभद्रा का

हरण किया गया था, तब बलदेव अर्जुन पर अत्यधिक क्रुद्ध हुए थे और तत्काल उनका वध कर देना चाहते थे। लेकिन श्रीकृष्ण अपने प्रिय मित्र के लिए, बलदेव के चरणों पर गिर पड़े और उन्हें इतना क्रुद्ध न होने की विनती की। तब कहीं बलदेव तुष्ट हुए थे। इसी प्रकार वे एक बार कौरवों से भी क्रुद्ध हुए थे और वे उनकी सारी नगरी को यमुना नदी में फेंक देना चाहते थे। लेकिन कौरवों ने उनके चरणकमलों में शरण लेकर उन्हें प्रसन्न किया था। वास्तव में वे कृष्ण के जन्म के पूर्व देवकी के सातवें पुत्र थे, लेकिन कंस के क्रोध से बचने के लिए वे रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिये गये थे। अतएव उनका अन्य नाम संकर्षण है, जो श्रीबलदेव के स्वांश भी हैं। चूँकि वे कृष्ण के ही समान शक्तिशाली हैं और भक्तों को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करनेवाले हैं, अतएव वे बलदेव कहलाते हैं। वेदों में भी आदेश है कि बिना बलदेव की कृपा प्राप्त किये कोई भी परमेश्वर को नहीं जान सकता। *बल* का अर्थ भौतिक शक्ति नहीं, अपितु आध्यात्मिक शक्ति है। कतिपय अल्पज्ञ लोग *बल* को शारीरिक बल मानते हैं, लेकिन शारीरिक बल से किसी को आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। शारीरिक शक्ति का अन्त भौतिक शरीर के ही साथ हो जाता है, लेकिन आध्यात्मिक बल जन्म-जन्मांतर तक आत्मा के साथ-साथ जाता है, अतएव बलदेव द्वारा प्रदत्त किया गया बल कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह बल शाश्वत होता है और इस प्रकार बलदेव समस्त भक्तों के आदि गुरु हैं।

श्री बलदेव सांदीपनि मुनि के शिष्य के रूप में श्रीकृष्ण के सहपाठी भी थे। उन्होंने बचपन में कृष्ण के साथ मिलकर अनेक असुरों का संहार किया था और विशेष रूप से उन्होंने तालवन में धेनुकासुर का वध किया था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में वे तटस्थ बने रहे और भरसक प्रयत्न करते रहे कि युद्ध न हो। वे दुर्योधन के पक्षपाती थे, तो भी वे तटस्थ बने रहे। जब दुर्योधन तथा भीमसेन के बीच गदायुद्ध हुआ, तो भी वे वहाँ उपस्थित थे। जब भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघ पर या कमर के नीचे प्रहार किया, तो वे उससे क्रोधित हुए थे और इस अनुचित कार्य का बदला लेना चाहते थे। लेकिन श्रीकृष्ण ने भीम को उनके क्रोध से बचाया। लेकिन भीमसेन से अरुचि उत्पन्न होने से, उन्होंने तुरन्त उस स्थान को छोड़ दिया और उनके जाते ही दुर्योधन मृत्यु को प्राप्त होने के लिए भूमि पर गिर पड़ा। उन्होंने अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का अंतिम संस्कार किया, क्योंकि वे उसके मामा थे। उस समय सारे पाण्डव इतने शोक-सन्तप्त थे कि यह संस्कार करना उनके वश की बात न थी। अन्तिम अवस्था में



उन्होंने अपने मुख से एक महान् श्वेत सर्प को उत्पन्न करके इस जगत् से प्रयाण किया और इस प्रकार वे शेषनाग द्वारा सर्प के रूप में ले जाये गये।

**प्रद्युम्न**—ये कामदेव के अथवा अन्यो के अनुसार सनत्कुमार के अवतार थे और परमेश्वर श्रीकृष्ण तथा द्वारका की महारानी लक्ष्मीदेवी, श्रीमती रुक्मिणी, के पुत्र के रूप में प्रकट हुए थे। वे उनमें से एक थे, जो अर्जुन को सुभद्रा से ब्याह के बाद बधाई देने गये थे। वे उन प्रधान सेनापतियों में से एक थे, जिन्होंने शाल्व से युद्ध किया था और युद्धभूमि में उससे लड़ते-लड़ते वे मूर्छित हो गये थे। उनका सारथी उन्हें युद्धभूमि से शिविर में ले आया था, किन्तु उन्होंने इस कार्य के लिए उसे कोसा था तथा स्वयं अत्यन्त खिन्न हुए थे। किन्तु उन्होंने पुनः शाल्व से युद्ध किया था और विजयी हुए थे। उन्होंने नारदजी से विभिन्न देवताओं के विषय में सुना। वे भगवान् श्रीकृष्ण के चार पूर्णांशों में तीसरे हैं। उन्होंने अपने पिता कृष्ण से ब्राह्मणों की महिमा के विषय में जिज्ञासा की थी। यदुवंशियों के बन्धुघाती युद्ध में, वे वृष्णियों के राजा भोज के हाथों मारे गये। मृत्यु के बाद उन्हें अपने मूल पद पर स्थापित किया गया।

**चारुदेष्णा**—श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी देवी के एक और पुत्र। ये भी द्रौपदी-स्वयंवर में उपस्थित थे। ये अपने भाइयों तथा पिता की भाँति महान् योद्धा थे। इन्होंने विविनिधक से युद्ध करके उसे मार डाला।

**साम्ब**—ये यदुकुल के महान् शूरवीरों में से एक थे। ये श्रीकृष्ण की पत्नी जाम्बवती से उत्पन्न पुत्र थे। इन्होंने अर्जुन से धनुर्विद्या का युद्ध कौशल सीखा था और महाराज युधिष्ठिर की संसद के सदस्य बने थे। ये महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित थे। जब प्रभास-यज्ञ में सारे वृष्णि एकत्र थे, तो सात्यकि ने भगवान् बलदेव के समक्ष इनके महिमाशाली गुणों का वर्णन किया था। ये युधिष्ठिर द्वारा सम्पन्न करवाये गये अश्वमेघ यज्ञ के समय अपने पिता श्रीकृष्ण के साथ उपस्थित थे। इनके भाइयों ने इन्हें गर्भवती स्त्री के रूप में कुछ ऋषियों के समक्ष प्रस्तुत किया था और इन्होंने हँसी-हँसी में उनसे पूछा था कि मेरे गर्भ से क्या उत्पन्न होगा? इस पर ऋषियों ने उत्तर दिया था कि तुम्हारे गर्भ से लोह-पिण्ड (मूसल) उत्पन्न होगा, जिससे यदुकुल में बन्धु-घाती युद्ध होगा। दूसरे ही दिन प्रातःकाल, साम्ब के गर्भ से एक बृहद् लोह-पिण्ड (मूसल) उत्पन्न हुआ, जिसे उग्रसेन को उचित कार्यवाही के लिए सौंप दिया गया। बाद में सचमुच ही पूर्वघोषित बन्धुघाती युद्ध हुआ, जिसमें साम्ब मारे गये।

इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के ये पुत्र अपना-अपना स्थान त्याग कर तथा विश्राम करना, बैठना, खाना जैसे कृत्यों से विरत होकर अपने पूज्य पिता की ओर दौड़ पड़े।

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः ।  
शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ।  
प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ १८ ॥

### शब्दार्थ

वारण-इन्द्रम्—मांगलिक कार्यवाले हाथी को; पुरस्कृत्य—सामने करके; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों द्वारा; स-सुमङ्गलैः—समस्त शुभ लक्षणों सहित; शङ्ख—शंख; तूर्य—तुरही की; निनादेन—ध्वनि से; ब्रह्म-घोषेण—वेदों के स्तोत्रों के उच्चारण से; च—तथा; आदृताः—महिमा-मण्डित; प्रति—की ओर; उज्जग्मू—तेजी में बढ़े; रथैः—रथ पर; हृष्टाः—आनन्द में; प्रणयागत—स्नेह से सिक्त; साध्वसाः—सादर।

वे फूल थामे हुए ब्राह्मणों समेत रथों पर भगवान् की ओर तेजी से बढ़े। उनके आगे-आगे सौभाग्य-के प्रतीक हाथी थे। शंख तथा तुरही बज रहे थे और वैदिक स्तोत्र उच्चरित हो रहे थे। इस प्रकार उन्होंने स्नेहसिक्त अभिवादन किया।

तात्पर्य : किसी महापुरुष के स्वागत की वैदिक विधि से सम्मान का वातावरण उत्पन्न होता है, जो आगन्तुक के लिए स्नेह तथा सत्कार से पूर्ण होता है। ऐसे स्वागत का शुभ वातावरण उपर्युक्त साज-सामग्री पर निर्भर करता है, जिसमें शंख, पुष्प, धूप, सजे हुए हाथी तथा वैदिक साहित्य से स्तोत्रों का पाठ करते हुए योग्य ब्राह्मण सम्मिलित हैं। स्वागत का ऐसा कार्यक्रम स्वागतकर्ता तथा स्वागत किए जाने वाले दोनों की निष्ठा से पूरित होता है।

वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ।  
लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥ १९ ॥

### शब्दार्थ

वारमुख्याः—विख्यात वेश्याएँ; च—तथा; शतशः—सैकड़ों; यानैः—सवारियों द्वारा; तद्-दर्शन—उनसे ( भगवान् श्रीकृष्ण से ) भेंट करने के लिए; उत्सुकाः—अत्यन्त उत्सुक; लसत्—लटकते हुए; कुण्डल—कान के आभूषण; निर्भात—चमकते हुए; कपोल—ललाट; वदन—मुख; श्रियः—सौन्दर्य।

उसी समय सैकड़ों विख्यात वेश्याएँ विविध सवारियों पर आरूढ़ होकर आगे बढ़ चलीं। वे सभी भगवान् से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक थीं और उनके सुन्दर मुख-मण्डल चमचमाते कुण्डलों से सुशोभित थे, जिनके कारण उनके ललाट की शोभा बढ़ रही थी।

तात्पर्य : यदि वेश्याएँ भगवद्भक्त हों, तो हम उनसे भी घृणा नहीं कर सकते। आज भी भारत के बड़े-बड़े नगरों में ऐसी अनेक वेश्याएँ हैं, जो भगवान् की निष्ठावान् भक्त हैं। समय के फेर से, किसी को ऐसा पेशा ग्रहण करना पड़ जाता है, जो समाज में सम्मानित न हो, लेकिन इसके कारण भगवद्भक्ति करने में कोई व्यवधान नहीं आता। भगवान् की भक्ति समस्त परिस्थितियों में बेरोकटोक रहती है। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व, द्वारका जैसे नगर में भी, जहाँ श्रीकृष्ण निवास कर रहे थे, वेश्याएँ रहती थीं। इसका अर्थ यह है कि समाज के समुचित निर्वाह के लिए वेश्याएँ भी आवश्यक अंग हैं। सरकार शराब की दुकानें खोलने देती है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि सरकार मदिरापान को प्रोत्साहित करती है। भाव यह है कि लोगों का एक ऐसा वर्ग है, जो किसी भी कीमत पर मदिरापान करेगा और ऐसा अनुभव है कि मद्य-निषेध से बड़े-बड़े शहरों में शराब की तस्करी को बढ़ावा मिला है। इसी प्रकार जो व्यक्ति घरों में सन्तुष्ट नहीं हो पाते हैं, उन्हें ऐसी छूट की अपेक्षा रहती है और यदि वेश्याएँ न हों, तो ऐसे निम्न लोग, दुसरो को वेश्यावृत्ति के लिए प्रेरित करेंगे। अच्छा हो कि वेश्याएँ बाजारों में उपलब्ध हों, जिससे समाज की पवित्रता कायम रहे। समाज के अन्दर वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देने की अपेक्षा वेश्या-वर्ग को बनाये रखना अच्छा होगा। वास्तविक सुधार तो सभी लोगों को भगवद्-भक्त बनने के लिए प्रबुद्ध करना है, जिससे जीवन के समस्त पतनोन्मुख कारकों पर रोक लगेगी।

विष्णुस्वामी वैष्णव सम्प्रदाय के महान् आचार्य, श्री बिल्वमंगल ठाकुर, अपने गृहस्थ जीवन में एक वेश्या के प्रति अत्यधिक आसक्त थे, जो भगवान् की भक्त थी। एक रात जब घनघोर वर्षा हो रही थी तथा बिजली कड़क रही थी, तो उसी में बिल्वमंगल ठाकुर चिन्तामणि के घर पहुँचे। वह आश्चर्यचकित थी कि ऐसी भयानक रात्रि में बाढ़ से उफनती नदी को पार करके ठाकुर कैसे आ गये। उसने बिल्वमंगल ठाकुर से कहा कि उस नगण्य स्त्री के हाड़-मांस के प्रति उनका जो आकर्षण है, यदि उसे भगवद्भक्ति में भगवान् की दिव्य सुन्दरता के प्रति लगाया जाता, तो अच्छा होता। यह ठाकुर के

लिए परीक्षा की घड़ी थी और वे वेश्या के वचनों से आत्म-साक्षात्कार की ओर मुड़े। बाद में उन्होंने उस वेश्या को अपना गुरु माना और उन्होंने अपने काव्य में कई स्थलों पर चिन्तामणि के नाम का गुणगान किया है, जिसने उन्हें सही मार्ग दिखलाया।

*भगवद्गीता* (९.३२) में भगवान् कहते हैं, “हे पृथापुत्र! निम्नकुल में उत्पन्न चंडाल, नास्तिकों के वंश में उत्पन्न मनुष्य तथा वेश्याएँ तक भी, जीवन की पूर्णता प्राप्त करेंगी, यदि वे भगवान् की अनन्य भक्ति का आश्रय ग्रहण कर लें, क्योंकि भक्तिमय सेवा के मार्ग में नीच कुल में जन्म तथा वृत्ति अवरोधक नहीं हैं। यह मार्ग उन सबों के लिए खुला है, जो उसका अनुगमन करना चाहते हैं।”

ऐसा प्रतीत होता है कि द्वारका की वेश्याएँ जो भगवान् से मिलने के लिए इतनी उत्सुक थीं, उनकी अनन्य भक्त थीं और इस तरह *भगवद्गीता* के उपरोक्त वचन के अनुसार वे सभी मोक्ष के पथ पर थीं। अतएव समाज में जिस एकमात्र सुधार की आवश्यकता है, वह है सारे नागरिकों को भगवद्भक्त बनाना। इस तरह उनमें स्वर्ग के निवासियों के समस्त सद्गुण स्वतः आ जाएँगे। दूसरी ओर, जो अभक्त हैं उनमें एक भी सद्गुण नहीं होता है, भले ही भौतिक दृष्टि से वे कितने ही उन्नत क्यों न हों। अन्तर इतना ही है कि भगवद्भक्त मोक्ष के पथ पर होते हैं, लेकिन अभक्त भवबन्धन में अधिकाधिक उलझने के मार्ग पर होते हैं। सभ्यता की प्रगति की कसौटी यह है कि लोग मोक्ष के मार्ग के लिए शिक्षित हैं या नहीं और उस पर अग्रसर हैं या नहीं।

नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधवन्दिनः ।

गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥ २० ॥

### शब्दार्थ

नट—नाटककार; नर्तक—नाचनेवाले; गन्धर्वाः—स्वर्ग के गवैय; सूत—पेशेवर पौराणिक; मागध—पेशेवर वंशावली-विशारद, भाट; वन्दिनः—पेशेवर विद्वान वक्ता; गायन्ति—कीर्तन करते हैं; च—क्रमशः; उत्तमश्लोक—परमेश्वर के; चरितानि—कार्यकलाओं को; अद्भुतानि—अलौकिक; च—तथा।

कुशल नाटककार, कलाकार, नर्तक, गायक, पौराणिक, वंशावली-विशारद ( भाट ) तथा विद्वान वक्ता ( वाचक ) सबों ने भगवान् के अलौकिक कार्यकलाओं से प्रेरित होकर अपना-अपना योगदान दिया। इस प्रकार वे आगे बढ़ते गये।

**तात्पर्य :** ऐसा प्रतीत होता है कि पाँच हजार वर्ष पूर्व भी समाज को नाटककारों, कलाकारों, नर्तकों, गायकों, पौराणिकों, वंशावली-विशारदों, सार्वजनिक वक्ताओं की भी आवश्यकता पड़ती थी। नर्तक, गायक तथा नाटक-कलाकार अधिकांशतया शूद्रजाति के होते थे, जबकि विद्वान पौराणिक, वंशावली-विशारद (भाट) तथा सार्वजनिक वक्ता ब्राह्मण जाति के होते थे। ये सभी किसी जाति विशेष से सम्बन्धित होते थे और अपने-अपने कुलों में इतने दक्ष हो जाते थे। ऐसे नट, नर्तक, गायक, पौराणिक, भाट तथा सार्वजनिक वक्ता विभिन्न युगों तथा कल्पों में भगवान् के अलौकिक कार्यकलापों का वर्णन करते थे, किसी सामान्य घटना का नहीं। न ही ये घटनाएँ किसी तिथि-क्रमानुसार होती थीं। सारे पुराण ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण हैं, जिनमें विभिन्न कालों तथा विभिन्न लोकों में भगवान् से सम्बन्धित विषयों का वर्णन है। अतः इसका कोई काल-क्रम नहीं मिलता है। अतएव जब आधुनिक इतिहासकार कोई शृंखला-सूत्र नहीं पकड़ पाते, तो वे अप्रामाणिक ढंग से यह आलोचना करते हैं कि सारे पुराण कपोल-कल्पित हैं।

यहाँ तक कि एक सौ वर्ष पूर्व भी भारत में सारे नाटकों का कार्य परमेश्वर के अलौकिक कार्यकलापों पर ही केन्द्रित होते थे। नाटकों के खेले जाने पर निश्चित रूप से जनसामान्य का मनोरंजन होता था और यात्रा टोलियाँ (नाटक मंडलियाँ) भगवान् के अलौकिक कार्यों का अभिनय करती थीं। इस प्रकार प्रत्येक निरक्षर किसान शैक्षिक योग्यता न होने पर भी वैदिक साहित्य के ज्ञान में सहभागी होता था। अतएव सामान्य व्यक्ति के आध्यात्मिक प्रकाश के लिए नाटककारों, गायकों, वक्ताओं इत्यादि की आवश्यकता होती है। भाट किसी विशेष परिवार के वंशजों का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करते थे। आज भी भारत के तीर्थस्थानों के पंडे किसी भी नवागंतुक का पूरा वंश-ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं। कभी-कभी यह आश्चर्यजनक कृत्य ऐसी महत्वपूर्ण जानकारी पाने के कारण अधिक ग्राहकों को आकर्षित करता है।

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ।  
यथाविध्युपसङ्गम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ २१ ॥

## शब्दार्थ

भगवान्— भगवान् श्रीकृष्ण; तत्र— उस स्थान पर; बन्धूनाम्— मित्रों के; पौराणाम्— नागरिकों के; अनुवर्तिनाम्— स्वागतार्थ आये लोगों का; यथा-विधि— यथायोग्य; उपसङ्गम्य— पास जाकर; सर्वेषाम्— हर एक के लिए; मानम्— सम्मान तथा आदर; आदधे— प्रदान किया।

भगवान् श्रीकृष्ण उनके निकट गये और उन्होंने अपने समस्त मित्रों, सम्बन्धियों, नागरिकों तथा उन समस्त लोगों को, जो उन्हें लेने तथा स्वागत करने के लिए आये थे, यथायोग्य सम्मान तथा आदर प्रदान किया।

तात्पर्य : पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् न तो निराकार हैं, न ऐसी निष्क्रिय वस्तु हैं, जो अपने भक्तों के भावों के साथ आदान-प्रदान करने में असमर्थ हों। यहाँ पर यथाविधि शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है “यथायोग्य”। वे अपने विभिन्न प्रकार के प्रशंसकों तथा भक्तों के साथ यथायोग्य आदान-प्रदान करते हैं। निस्सन्देह शुद्ध भक्त एक ही तरह के होते हैं, क्योंकि भगवान् के अतिरिक्त उनका कोई अन्य सेवा-पात्र नहीं होता, इसीलिए भगवान् भी ऐसे शुद्ध भक्तों के साथ यथायोग्य आदान-प्रदान करते हैं अर्थात् वे अपने शुद्ध भक्तों के सारे कार्यों के प्रति सतर्क रहते हैं। जो लोग उन्हें निराकार कहते हैं, भगवान् भी उनके प्रति कोई व्यक्तिगत रुचि नहीं दिखाते। वे प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आध्यात्मिक चेतना के विकास के रूप में प्रसन्न करते हैं और ऐसे आदान-प्रदान का नमूना यहाँ पर विभिन्न स्वागत करनेवालों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

प्रह्लाभिवादानाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ।

आश्वास्य चाश्रुपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥ २२ ॥

## शब्दार्थ

प्रह्ला— अपना सिर झुकाकर; अभिवादन— शब्दों से अभिवादन; आश्लेष— आलिंगन; कर-स्पर्श— हाथ मिलाना; स्मित-ईक्षणैः— बाँकी हँसी से; आश्वास्य— प्रोत्साहन द्वारा; च— तथा; आश्रुपाकेभ्यः— कुत्ता खानेवाली अधम जाति तक; वरैः— आशीर्वादों से; च— तथा; अभिमतैः— जिसकी जैसी इच्छा हो; विभुः— सर्वशक्तिमान ने।

सर्वशक्तिमान भगवान् ने वहाँ पर समुपस्थित लोगों को, यहाँ तक कि नीच से नीच जाति वाले को, अपना मस्तक झुकाकर, बधाई देकर, आलिंगन करके, हाथ मिलाकर, देखकर तथा हँसकर, आश्वासन देकर तथा वरदान देकर उनका अभिवादन किया।

**तात्पर्य :** भगवान् श्रीकृष्ण का स्वागत करने के लिए वहाँ सभी प्रकार के लोग थे—पिता वसुदेव, पितामह उग्रसेन तथा गुरु गर्गमुनि से लेकर वेश्याएँ तथा कुत्ते तक खाने के आदी चण्डाल तक थे। भगवान् ने इन सबों से उनके पद तथा प्रतिष्ठा के अनुसार उनका अभिवादन किया। शुद्ध जीवों के रूप में, सारे लोग भगवान् के भिन्नांश हैं और इस प्रकार अपने सनातन सम्बन्ध के कारण कोई उनसे पराया नहीं है। ऐसे शुद्ध जीव, भौतिक गुणों के संदूषण के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों में श्रेणीबद्ध किये जाते हैं, लेकिन इन भौतिक श्रेणियों के बावजूद भगवान् अपने समस्त भिन्नांशों पर समान रूप से वत्सल रहते हैं। वे इन भौतिकता में डूबे जीवों को अपने धाम वापस लौटने के लिए स्मरण दिलाने के लिए ही अवतरित होते हैं और जो बुद्धिमान लोग हैं, वे भगवान् द्वारा सभी जीवों को दिए गए इस अवसर का लाभ उठाते हैं। भगवान् किसी को अपने धाम के लिए अयोग्य नहीं ठहराते, यह तो जीव पर निर्भर करता है कि वह इसे स्वीकार करे या नहीं।

स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ।

आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाविशत्पुरम् ॥ २३ ॥

### शब्दार्थ

स्वयम्—अपने आप; च—भी; गुरुभिः—वयस्क स्वजनों द्वारा; विप्रैः—ब्राह्मणों के द्वारा; सदारैः—अपनी-अपनी पत्नियों सहित; स्थविरैः—अशक्तों ( वृद्धों ) के द्वारा; अपि—भी; आशीर्भिः—आशीर्वाद से; युज्यमानः—प्रशंसित होकर; अन्यैः—अन्यों द्वारा; वन्दिभिः—प्रशंसकों द्वारा; च—तथा; अविशत्—प्रवेश किया; पुरम्—नगर में।

तब भगवान् ने ज्येष्ठ-वरेष्ठ सम्बन्धियों तथा अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आए अशक्त ब्राह्मणों के साथ नगर में प्रवेश किया। वे सब आशीर्वाद दे रहे थे और भगवान् के यशों का गान कर रहे थे। दूसरे लोगों ने भी भगवान् की महिमा की प्रशंसा की।

**तात्पर्य :** समाज में ब्राह्मण कभी भी भावी निवृत्त जीवन के लिए धन संग्रह करने के प्रति ध्यान नहीं देते थे। जब वे वृद्ध एवं अशक्त हो जाते थे, तब वे अपनी पत्नियों सहित राजदरबार पहुँचते थे और केवल राजाओं के महिमामयुक्त कार्यों की प्रशंसा करने से उन्हें जीवन की सारी आवश्यकताएँ प्रदान की जाती थीं। ऐसे ब्राह्मण राजा के चाटुकार नहीं होते थे, अपितु इससे राजाओं को वास्तव में यश मिलता था और इन ब्राह्मणों के सम्मानयुक्त कार्यों से वे राजा पुण्यकर्मों को सच्चे दिल से करने के लिए

और भी प्रोत्साहित होते थे। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त यशों के पात्र हैं और स्तुति करनेवाले ब्राह्मण तथा अन्य लोग भगवान् की महिमा का गान करने के कारण स्वयं धन्य हो गए।

राजमार्ग गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ।

हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥ २४ ॥

### शब्दार्थ

राज-मार्गम्—आम सड़कों से; गते—जाते हुए; कृष्णे—भगवान् कृष्ण द्वारा; द्वारकायाः—द्वारका नगरी की; कुल-स्त्रियः—प्रतिष्ठित कुलों की स्त्रियाँ; हर्म्याणि—राजमहलों में; आरुरुहुः—चढ़ गईं; विप्र—हे ब्राह्मणों; तत्-ईक्षण—उनका ( कृष्ण का ) दर्शन करने के लिए; महा-उत्सवाः—महान् उत्सव मानकर।

जब भगवान् राजमार्ग से होकर जा रहे थे, तो द्वारका के प्रतिष्ठित परिवारों की सभी स्त्रियाँ भगवान् का दर्शन करने के लिए अपने-अपने महलों की अटारियों पर चढ़ गईं। इसे वे एक महान् उत्सव समझ रही थीं।

तात्पर्य : भगवान् का दर्शन करना, निस्सन्देह, अपने आप में एक महोत्सव है जैसाकि द्वारका नगर की स्त्रियों ने माना। इसे आज भी भारत की श्रद्धालु स्त्रियाँ इसी तरह मानती हैं। विशेषकर, झूलना तथा जन्माष्टमी-उत्सवों के अवसरों पर, भगवान् के मन्दिर में, जहाँ उनके शाश्वत दिव्य रूप की पूजा की जाती है, स्त्रियाँ सर्वाधिक संख्या में जुटती हैं। मन्दिर में स्थापित भगवान् का दिव्य स्वरूप, साक्षात् भगवान् से भिन्न नहीं होता। भगवान् का ऐसा स्वरूप *अर्चा-विग्रह* या *अर्चा-अवतार* कहलाता है और इस भौतिक जगत के असंख्य भक्तों की भक्ति को सरल बनाने के लिए भगवान् की अन्तरंगा शक्ति द्वारा इसे विस्तार दिया जाता है। भौतिक इन्द्रियाँ भगवान् की आध्यात्मिक प्रकृति की अनुभूति नहीं कर पातीं। अतएव भगवान् *अर्चा-विग्रह* रूप का स्वीकार करते हैं, जो बाह्य रूप से मिट्टी, काठ तथा पत्थर का बना होता है, लेकिन इसमें कोई भौतिक कल्मष नहीं होता। भगवान् *कैवल्य* (एकाकी) होने के कारण उनमें कोई भौतिक पदार्थ नहीं रहता। वे अद्वितीय हैं, अतएव वे भौतिक धारणा से कल्मषग्रस्त हुए बिना किसी भी रूप में प्रकट हो सकते हैं। अतएव भगवान् के मन्दिर के सारे उत्सव, जिस रूप में वे मनाये जाते हैं उन उत्सवों के समान होते हैं, जो लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व द्वारका में भगवान् के वास के दिनों में मनाये जाते थे। प्रामाणिक आचार्य, जो ईश-तत्त्व के विज्ञान से भलीभाँति परिचित होते हैं, ऐसे भगवत्-मन्दिरों की स्थापना विधि-विधानों के अन्तर्गत सामान्य लोगों की सुविधा के लिए



करते हैं, लेकिन जो लोग अल्पज्ञ हैं और इस विज्ञान से परिचित नहीं होते, वे इस महान् प्रयास को मूर्ति-पूजा मानने की गलती करते हैं और ऐसी बातों में अपनी टाँग अड़ाते हैं, जिन तक उनकी पहुँच नहीं होती। अतएव वे स्त्रियाँ या पुरुष, जो भगवान् के दिव्य स्वरूप की झाँकी प्राप्त करने के लिए भगवान् के मन्दिरों में उत्सव रचाते हैं, भगवान् के दिव्य रूप में विश्वास न करनेवालों से हजार गुना धन्य हैं।

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि द्वारका के निवासी बड़े-बड़े महलों के मालिक थे। यह नगर की समृद्धि का द्योतक है। स्त्रियाँ जुलूस को देखने तथा भगवान् की झाँकी प्राप्त करने के उद्देश्य से अटारियों पर चढ़ गईं। स्त्रियाँ मार्गों की भीड़ के बीच में नहीं गईं और इस तरह उनकी प्रतिष्ठा भलिभाँतिबनी रही। वहाँ पर मनुष्य के साथ बनावटी समानता नहीं थी। स्त्री को पुरुष से पृथक् रखकर, उसकी प्रतिष्ठा की अधिक अच्छे ढंग से रक्षा की जा सकती है। स्त्री-पुरुषों को बे-रोक-टोक मिलना-जुलना नहीं चाहिए।

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ।

न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गमच्युतम् ॥ २५ ॥

### शब्दार्थ

नित्यम्—नियमित रूप से, सदैव; निरीक्षमाणानाम्—उनको देखनेवालों का; यत्—यद्यपि; अपि—के होते हुए; द्वारका-ओकसाम्—द्वारका के निवासी; न—कभी नहीं; वितृप्यन्ति—तृप्त होते हैं; हि—ठीक से; दृशः—दृश्य; श्रियः—सौन्दर्य; धाम-अङ्गम्—शरीर रूपी आगार; अच्युतम्—अमोघ।

द्वारकावासी समस्त सौन्दर्य के आगार अच्युत भगवान् को नित्य निहारने के अभ्यस्त थे, फिर भी वे कभी तृप्त नहीं होते थे।

**तात्पर्य :** जब द्वारका नगर की स्त्रियाँ अपने-अपने महलों की अटारियों पर चढ़ गईं, तो उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि इससे पूर्व, उन्होंने अच्युत भगवान् के सुन्दर शरीर को अनेक बार देखा था। इससे संकेत मिलता है कि उनके भगवद्दर्शन की इच्छा से स्त्रियाँ तृप्त नहीं हुई थीं। यदि कोई भौतिक वस्तु बारम्बार देखी जाती है, तो उसके प्रति तृप्ति के नियमानुसार, आकर्षण का कम होना स्वाभाविक है, लेकिन यह तृप्ति का नियम भौतिक वस्तुओं पर लागू होता है, आध्यात्मिक जगत में इसकी गुंजायश नहीं रहती। यहाँ पर अच्युत शब्द महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यद्यपि भगवान् ने कृपापूर्वक पृथ्वी पर

अवतरित हुए थे, किन्तु तो भी वे अच्युत हैं। सारे जीव च्युत अर्थात् पतनशील हैं, क्योंकि जब वे भौतिक जगत के संसर्ग में आते हैं, तो वे अपनी आध्यात्मिक पहचान खो देते हैं, जिसके कारण उनका भौतिक शरीर जन्म, वृद्धि, रूपान्तर, परिस्थिति, क्षय तथा विनाश जैसे प्राकृतिक नियमों के अधीन रहता है। किन्तु भगवान् का शरीर ऐसा नहीं होता है। वे अपने वास्तविक रूप में अवतरित होते हैं और भौतिक प्रकृति के नियमों द्वारा कभी भी प्रभावित नहीं होते। उनका शरीर प्रत्येक सम्भावित वस्तु का स्रोत है और अनुभवातीत समस्त शोभा का आगार है। अतएव भगवान् के दिव्य शरीर का दर्शन करके किसी को भी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि उसमें नित्य नवीन सौन्दर्य दृष्टिगत होता रहता है। दिव्य नाम, रूप, गुण, पार्षद इत्यादि सभी आध्यात्मिक अभिव्यक्तियाँ हैं और भगवान् के पवित्र नाम का नाम-कीर्तन करने तथा उनके गुणों का कथन करने में कभी तृप्ति नहीं होती और न भगवान् के पार्षदों की ही कोई सीमा है। वे सबों के स्रोत हैं और असीम हैं।

श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दशाम् ।  
बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम् ॥ २६ ॥

### शब्दार्थ

श्रियः—लक्ष्मी का; निवासः—निवासस्थान; यस्य—जिसका; उरः—वक्षस्थल; पान-पात्रम्—जल का घड़ा; मुखम्—मुँह; दशाम्—आँखों का; बाहवः—बाहें; लोक-पालानाम्—प्रशासक देवताओं की; सारङ्गाणाम्—भक्तों का, जो किसी वस्तु के विषय में कुछ कहते या गाते हैं; पद-अम्बुजम्—चरणकमल।

भगवान् का वक्षस्थल लक्ष्मी देवी का निवासस्थल है। उनका चाँद जैसा मुखड़ा उन नेत्रों के लिए जलपात्र के समान है, जो सुन्दर वस्तुओं के लिए सदैव लालायित रहते हैं। उनकी भुजाएँ प्रशासक देवताओं के लिए आश्रयस्थल हैं और उनके चरणकमल उन शुद्ध भक्तों की शरणस्थली हैं, जो भगवान् के अतिरिक्त न तो कुछ कहते हैं, न गाते हैं।

तात्पर्य : मनुष्यों की अनेक कोटियाँ हैं और वे सभी भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार का भोग खोजती रहती हैं। कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जो लक्ष्मीदेवी की कृपा के इच्छुक रहते हैं। उन्हें वैदिक साहित्य यह बताता है कि चिन्तामणिधाम\* में भगवान् हजारों-हजार लक्ष्मियों के द्वारा पूरे भक्तिभाव सहित सेवित होते रहते हैं। यह धाम भगवान् का दिव्य घर है, जहाँ सारे वृक्ष कल्पतरु हैं और प्रासाद पारसमणि के बने हुए हैं। वहाँ पर भगवान् अपने स्वाभाविक पेशे के तौर पर सुरभि गायों को चराने में

लगे रहते हैं। यदि हम भगवान् के शारीरिक सौन्दर्य से आकृष्ट हों, तो ये लक्ष्मियाँ स्वतः दिखाई पड़ती हैं। निर्विशेषवादी इन लक्ष्मियों को नहीं देख पाते, क्योंकि वे शुष्क चिन्तक होते हैं। लेकिन जो कलाकार हैं तथा सुन्दर सृष्टि द्वारा अभिभूत रहते हैं, उन्हें चाहिए कि पूर्ण तुष्टि

footnote starts here

चिन्तामणि-प्रकर-सद्यसु कल्पवृक्ष

लक्षावृक्षतेषु सुरभिरभिपालयन्तम्।

लक्ष्मी-सहस्र-शत-सम्भ्रम

सेव्यमानम् गोविन्दामादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

( ब्रह्मसंहिता, ५.२९ )

footnote ends here

के लिए भगवान् का सुन्दर मुख देखें। भगवान् का मुख समस्त सुन्दरता का आगार है। जिसे वे सुन्दर प्रकृति कहकर पुकारते हैं, वह तो उनकी मन्द मुस्कान है और जिसे वे पक्षियों का कलरव कहते हैं, वे भगवान् की मर्मर ध्वनियाँ हैं। ब्रह्माण्ड की व्यवस्था के लिए प्रशासनाधिकारी देवता होते हैं और राज्य-स्तर पर भी छोटे-छोटे देवता होते हैं। वे सदैव अन्य प्रतियोगियों से भयभीत रहते हैं, किन्तु यदि वे भगवान् की भुजाओं का आश्रय लें, तो भगवान् शत्रुओं के आक्रमण से सदैव उनकी रक्षा कर सकते हैं। प्रशासनिक सेवा में लगा हुआ भगवान् का श्रद्धालु दास आदर्श प्रशासनाधिकारी होता है और वह सामान्य-जन के हितों की रक्षा भलीभाँति कर सकता है। अन्य तथाकथित प्रशासक राजतंत्र के प्रतीक होते हैं, जिनके द्वारा शासित लोगों को दुःसह दुख सहने पड़ते हैं। प्रशासकगण भगवान् की भुजाओं का संरक्षण प्राप्त करके सुरक्षित रह सकते हैं। परमेश्वर सभी वस्तुओं के सार हैं, अतएव वे सारम् कहलाते हैं और जो उनका गुणगान करते हैं, वे सारंग या शुद्ध भक्त कहलाते हैं। शुद्ध भक्त तो भगवान् के चरणकमलों के लिए लालायित रहते हैं। कमल में एक प्रकार का मधु होता है, जिसका दिव्य आस्वाद भक्तगण करते हैं। वे उन मधुमखियों के तुल्य हैं, जो मधु के लिए सदा दौड़ती रहती हैं। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के महान् भक्त आचार्य श्रील रूप गोस्वामी ने अपनी तुलना मधुमक्खी से करते हुए इस कमल-मधु के विषय में एक गीत लिखा है : “हे मेरे भगवान् कृष्ण! मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ। मेरा मन मधुमक्खी के समान है, जो थोड़ा कुछ मधु पाने के लिए लालायित है। अतएव कृपा

करके मेरी मनरूपी मधुमक्खी को अपने चरणकमलों में स्थान प्रदान करें, जो समस्त दिव्य मधु के आगार हैं। मैं जानता हूँ कि ब्रह्मा जैसे बड़े-बड़े देवता, वर्षों तक लगातार गहन ध्यान में तल्लीन रहकर भी, आपके चरणकमलों के नाखूनों की द्युति को भी देख नहीं पाते। फिर भी, हे अच्युत! मेरी ऐसी अभिलाषा है, क्योंकि आप शरणागतों पर अत्यन्त दयालु रहते हैं। हे माधव! मैं यह भी जानता हूँ कि मुझ में आपके चरणों की सेवा के प्रति वास्तविक अनुरक्ति नहीं है, लेकिन आप अकल्पनीय शक्तिशाली हैं, अतएव आप असम्भव से असम्भव कार्य कर सकते हैं। आपके चरणकमलों के समक्ष स्वर्ग का अमृत भी तुच्छ है, अतएव मैं उनके प्रति अत्यधिक अनुरक्त हूँ। अतएव हे परम नित्य! मेरे मन को आपके चरणकमलों में स्थिर होने दे, जिससे मैं आपकी दिव्य सेवा का आस्वाद निरन्तर लेता रहूँ।” भक्तगण भगवान् के चरणकमलों को प्राप्त करके तुष्ट रहते हैं और उन्हें भगवान् के सर्व-सुन्दर मुख को देखने अथवा उनकी बलिष्ठ भुजाओं के संरक्षण की कोई अभिलाषा नहीं रह जाती। वे स्वभाव से विनम्र होते हैं और भगवान् का ऐसे विनम्र भक्तों के प्रति सदैव झुकाव रहता है।

सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः

प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ।

पिशङ्गवासा वनमालया बभौ

घनो यथाकोडुपचापवैद्युतैः ॥ २७ ॥

**शब्दार्थ**

सित-आतपत्र—श्वेत छाता; व्यजनैः—चामर से; उपस्कृतः—झला जाकर; प्रसून—फूलों की; वर्षैः—वर्षा से; अभिवर्षितः—आच्छादित होकर; पथि—मार्ग पर; पिशङ्ग-वासाः—पीताम्बर से; वन-मालया—फूलों के हारों से; बभौ—हो गया; घनः—बादल; यथा—जिस प्रकार; अर्क—सूर्य; उडुप—चन्द्रमा; चाप—इन्द्रधनुष; वैद्युतैः—बिजली से।

जब भगवान् द्वारका के राजमार्ग से होकर गुजर रहे थे, तब एक श्वेत छत्र तानकर उनके सिर को धूप से बचाया जा रहा था। श्वेत पंखों वाले पंख ( चंवर ) अर्धवृत्ताकार में झल रहे थे और मार्ग पर फूलों की वर्षा हो रही थी। पीताम्बर तथा फूलों के हार से वे इस प्रकार प्रतीत हो रहे थे, मानो श्याम बादल एक ही साथ सूर्य, चन्द्रमा, बिजली तथा इन्द्रधनुष से घिर गया हो।

तात्पर्य : सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रधनुष तथा बिजली एकसाथ आसमान में कभी प्रकट नहीं होते। सूर्य के रहने पर चाँदनी नगण्य बन जाती है और यदि बादल हों तथा इन्द्रधनुष उगा हो, तो फिर बिजली

नहीं चमकती। भगवान् के शरीर की कान्ति वर्षाऋतु के नवीन बादल जैसी है। उनकी तुलना यहाँ पर बादल से की गई है। उनके सिर के ऊपर तना श्वेत छाता मानो सूर्य है। चँवर के हिलने-डुलने की तुलना चन्द्रमा से की गई है। फूलों की वर्षा की उपमा तारों से और उनके पीताम्बर की तुलना इन्द्रधनुष से की गई है। अतएव आकाश की ये सारी गतिविधियाँ कभी भी एकसाथ घटित नहीं हो सकतीं और तुलना द्वारा समंजित नहीं की जा सकतीं। ऐसा सामञ्जस्य तभी सम्भव है, जब हम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का चिन्तन करें। भगवान् सर्वशक्तिमान हैं और उनकी उपस्थिति में कोई भी असम्भव बात उनकी अचिन्त्य शक्ति से सम्भव बनाई जा सकती है। लेकिन द्वारका के मार्गों से उनके गुजरते समय जो स्थिति उत्पन्न हुई, वह सुन्दर थी और उसकी तुलना प्राकृतिक घटनाओं के वर्णन के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु से नहीं की जा सकती।

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ।

ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥ २८ ॥

### शब्दार्थ

प्रविष्टः—प्रवेश करने पर; तु—लेकिन; गृहम्—घर में; पित्रोः—पिता के; परिष्वक्तः—आलिंगित होकर; स्व-मातृभिः—अपनी माताओं द्वारा; ववन्दे—नमस्कार किया; शिरसा—सिर से; सप्त—सात; देवकी—देवकी; प्रमुखा—इत्यादि; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक।

अपने पिता के घर में प्रवेश करने पर उन्हें उनकी माताओं ने गले लगाया और भगवान् ने उनके चरणों पर अपना शिर रखकर उन्हें नमस्कार किया। माताओं में देवकी ( उनकी असली माता ) प्रमुख थीं।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि भगवान् कृष्ण के पिता वसुदेव का अपना अलग से आवास था, जहाँ वे अपनी अठारह रानियों समेत रहते थे, जिनमें से श्रीमती देवकी कृष्ण की असली माता हैं। लेकिन इतने पर भी, अन्य सौतेली माताएँ उन्हें समान रूप से प्यार करती थीं, जैसाकि अगले श्लोक से पता चल जाएगा। भगवान् कृष्ण भी अपनी असली माता तथा विमाताओं में कोई भेदभाव नहीं करते थे और उन्होंने उस अवसर पर उपस्थित वसुदेव की समस्त पत्नियों को नमस्कार किया। शास्त्रों के अनुसार भी सात प्रकार की माताएँ होती हैं—(१) वास्तविक माता, (२) गुरु-पत्नी, (३) ब्राह्मण-पत्नी, (४) राजा की पत्नी, (५) गाय, (६) धाय तथा (७) पृथ्वी। ये सभी माताएँ हैं। शास्त्रों के इस

आदेश से भी विमाता, जो पिता की पत्नी होती है, माता के तुल्य होती है, क्योंकि पिता गुरु भी होता है। ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् कृष्ण अन्यो को विमाताओं के साथ व्यवहार करने की शिक्षा देने के लिए एक आदर्श पुत्र की भूमिका निभाते हैं।

ताः पुत्रमङ्गमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ।

हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥

### शब्दार्थ

ताः—वे सभी; पुत्रम्—पुत्र को; अङ्गम्—गोद में; आरोप्य—बिठाकर; स्नेह-स्नुत—स्नेह से सिक्त; पयोधराः—वक्षस्थल; हर्ष—प्रसन्नता; विह्वलित-आत्मानः—से विभोर; सिषिचुः—नम; नेत्रजैः—आँखों के; जलैः—जल से।

माताओं ने अपने पुत्र को गले लगाने के बाद, उसे अपनी-अपनी गोद में बिठाया। विशुद्ध स्नेह के कारण उनके स्तनों से दूध निकल आया। वे हर्ष से विभोर हो गईं और उनके नेत्रों के अश्रुओं से भगवान् भीग गये।

तात्पर्य : जब भगवान् कृष्ण वृन्दावन में थे, तो गौंवे भी उनके प्रति स्नेहिल हो उठती थीं और वे उनके थनों से दूध दुह लिया करते थे। तो उनकी विमाताओं का क्या कहना, जो उनकी माता तुल्य ही थीं ?

अथाविशत् स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ।

प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० ॥

### शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अविशत्—प्रविष्ट हुए; स्व-भवनम्—अपने महलों में; सर्व—समस्त; कामम्—इच्छाएँ; अनुत्तमम्—सब तरह से पूर्ण; प्रासादाः—महल; यत्र—जहाँ; पत्नीनाम्—पत्नियों को; सहस्राणि—हजारों; च—इसके ऊपर; षोडश—सोलह।

तत्पश्चात् भगवान् अपने महलों में प्रविष्ट हुए, जो सभी तरह से परिपूर्ण थे। उनमें उनकी पत्नियाँ रहती थीं और वे सोलह हजार से अधिक थीं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण की १६,१०८ पत्नियाँ थीं और प्रत्येक के लिए चारदीवारी तथा उद्यान से युक्त पूर्ण रूप से सुसज्जित महल थे। इन महलों का पूरा विवरण दशम स्कंध में दिया गया है। सारे महल सर्वोत्तम संगमरमर पत्थर के बने थे। वे रत्नों से प्रकाशित थे और मखमल तथा रेशम के पर्दों तथा गलीचों से सज्जित थे, जिनके किनारों पर सोने की जरी लगी थी। भगवान् का अर्थ है, जो समस्त

बल, समस्त शक्ति, समस्त ऐश्वर्य, समस्त सौन्दर्य, समस्त ज्ञान तथा समस्त वैराग्य से परिपूर्ण हो। अतएव भगवान् के महलों में कोई वस्तु ऐसी न थी, जिससे भगवान् की सारी इच्छाएँ पूरी न होती हों। भगवान् असीम हैं, अतएव उनकी इच्छाएँ भी असीमित हैं और पूर्ति भी असीमित है। प्रत्येक वस्तु असीम होने के कारण यहाँ पर संक्षेप में *सर्वकामम्*, अर्थात् सभी वांछनीय वस्तुओं से पूर्ण कहा गया है।

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं  
विलोक्य सञ्जातमनोमहोत्सवाः ।  
उत्तस्थुरारात् सहसासनाशयात्  
साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥ ३१ ॥

### शब्दार्थ

पत्न्यः—पत्नियाँ ( भगवान् कृष्ण की ); पतिम्—पति को; प्रोष्य—घर से दूर गया हुआ; गृह-अनुपागतम्—अब घर लौटा हुआ; विलोक्य—देखकर; सञ्जात—उत्पन्न करके; मनः-महा-उत्सवाः—मन के भीतर प्रसन्नतापूर्ण उत्सव का भाव; उत्तस्थुः—उठीं; आरात्—दूर से; सहसा—एकाएक; आसना—आसनों से; आशयात्—ध्यान अवस्था से; साकम्—के साथ; व्रतैः—व्रत के; व्रीडित—लज्जा से देखते; लोचन—नेत्र; आननाः—मुख।

दीर्घकाल तक बाहर रहने के बाद अपने पति को घर आया देखकर श्रीकृष्ण की रानियाँ मन ही मन अत्यन्त हर्षित हुईं। वे अपने-अपने आसनों तथा ध्यानों से तुरन्त उठकर खड़ी हो गईं। सामाजिक प्रथा के अनुकूल, उन्होंने लज्जा से अपने मुख ढक लिये और दृष्टि नीची किये देखने लगीं।

**तात्पर्य :** जैसाकि ऊपर कहा गया है भगवान् अपनी १६,१०८ रानियों के महलों में प्रविष्ट हुए। इसका अर्थ यह है कि भगवान् ने तुरन्त ही अपना विस्तार उतने अंशों में कर लिया, जितनी रानियाँ तथा महल थे और उन सबों में एकसाथ पृथक्-पृथक् प्रविष्ट हुए। यहाँ पर उनकी अन्तरंगा शक्ति की अन्य अभिव्यक्ति हुई है। वे इच्छानुसार अनेक आध्यात्मिक स्वरूपों में अपना विस्तार कर सकते हैं, यद्यपि वे अद्वितीय हैं। श्रुति मंत्र से प्रतिपादित होता है कि परम पूर्ण एक हैं, किन्तु इच्छानुसार वे अनेक बन जाते हैं। परमेश्वर के ये अनेक विस्तार पूर्ण तथा भिन्नांशों के रूप में होते हैं। भिन्नांश उनकी शक्ति के द्योतक हैं और पूर्णांश उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस तरह भगवान् ने अपने १६,१०८ पूर्ण अंश प्रकट किये और प्रत्येक रानी के महल में एक ही साथ प्रविष्ट हुए। इसे *वैभव* या भगवान् की

दिव्य शक्ति कहा जाता है। चूँकि वे ऐसा कर सकते हैं, अतएव वे योगेश्वर भी कहलाते हैं। सामान्यतया कोई योगी अपना अधिक से अधिक दस गुना विस्तार कर सकता है, लेकिन भगवान् इच्छानुसार कई हजार गुना या अनन्त विस्तार कर सकते हैं। अश्रद्धालु लोग यह जानकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि कृष्ण ने १६,००० से अधिक रानियों से विवाह किया, क्योंकि वे उन्हें अपने ही समान एक मान कर, अपनी सीमित शक्ति से उनकी शक्ति की तुलना करते हैं। अतएव मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि भगवान् कभी भी जीवों के स्तर पर नहीं होते। जीव उनकी तटस्था शक्ति के विस्तार मात्र हैं। मनुष्य को कभी सोचना भी नहीं चाहिए कि शक्तिमान तथा शक्ति समान होते हैं, यद्यपि शक्ति तथा शक्तिमान में गुण का केवल रंचमात्र अन्तर है। रानियाँ भी उनकी अन्तरंगा शक्ति की विस्तार थीं और इस तरह शक्ति तथा शक्तिमान निरन्तर दिव्य आनन्द का आदान-प्रदान करते हैं। इन्हें ही भगवान् की लीलाएँ कहते हैं। अतएव किसी को यह जानकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि भगवान् की इतनी सारी पत्नियाँ थीं। उल्टे, लोगों को यह मानना चाहिए कि यदि भगवान् के लाखों-करोड़ों पत्नियाँ होतीं, तो भी वे अपनी असीम तथा अक्षय शक्ति को पूरी तरह प्रकट नहीं कर रहे। उन्होंने केवल १६,००० पत्नियों से ब्याह किया और उनमें से प्रत्येक के महल में यह दिखाने के लिए प्रवेश किया कि इस पृथ्वी पर कोई मनुष्य कितना ही बलवान् क्यों न हो, वह न तो उनकी समता कर सकता है, न उनसे बढ़कर है। अतएव न तो कोई उनके समान है, न उनसे बढ़कर है। भगवान् सभी मामलों में सदा महान् हैं। शाश्वत सत्य भी यही है कि, “ईश्वर महान् हैं।”

अतएव कुरुक्षेत्र के युद्ध के कारण दीर्घकाल तक घर से दूर रहनेवाले अपने पति को ज्योंही रानियों ने कुछ दूरी पर देखा, तो वे ध्यान की निद्रा से जग गई और अपने प्रियतम की अगवानी के लिए तैयार हो गई। याज्ञवल्क्य के धार्मिक आदेशानुसार जिस स्त्री का पति घर से बाहर हो, उसे न तो किसी सामाजिक उत्सव में भाग लेना चाहिए, न शरीर को अलंकृत करना चाहिए, न हँसना चाहिए और न किसी भी परिस्थिति में अपने सम्बन्धी के घर जाना चाहिए। जिन स्त्रियों के पति बाहर हों, उनके लिए यही व्रत है। लेकिन साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि पत्नी कभी भी अपने पति के समक्ष मलिन अवस्था में उपस्थित न हो। वह अपने आपको आभूषणों से अलंकृत करे और अच्छे वस्त्र पहने और पति के समक्ष सदैव प्रसन्न तथा हर्षित मुद्रा में जाए। कृष्ण की सारी रानियाँ पति की



अनुपस्थिति का चिन्तन करते हुए ध्यान-मग्न थीं और निरन्तर उन्हीं का ध्यान करती रहती थीं। भगवान् के भक्त भगवान् के ध्यान के बिना पल भर भी नहीं रह सकते, तो फिर रानियों के लिए क्या कहा जाय, जो द्वारका में भगवान् की लीलाओं में रानी के रूप में अवतरित हुई लक्ष्मीयाँ थीं। वे भगवान् की उपस्थिति द्वारा या समाधि द्वारा उनसे कभी विलग नहीं की जा सकतीं। वृन्दावन की गोपियाँ जब भगवान् वन में गाएँ चराने के लिए बाहर जाते थे, तो भगवान् को भुला नहीं पाती थीं। जब बाल-रूप भगवान् कृष्ण गाँव में नहीं होते थे, तो घर पर गोपियाँ, नरम चरणकमलों से कठोर भूमि पर चलते हुए कृष्ण के बारे में चिन्ता करती रहतीं। कभी-कभी इस तरह चिन्तन करते-करते वे समाधि में पहुँच जातीं और हृदय में सन्ताप करतीं। भगवान् के शुद्ध पार्षदों की ऐसी ही दशा होती है। वे सदैव समाधि में रहते हैं। अतएव कृष्ण की अनुपस्थिति में रानियाँ भी समाधिस्थ थीं। इस समय, भगवान् को कुछ दूरी पर देखकर, उन्होंने अपने सारे कार्य छोड़ दिये, जिनमें उपर्युक्त स्त्रियों के व्रत भी सम्मिलित थे। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के मतानुसार इस अवसर पर नियमित मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया हुई। पहले तो वे सभी अपने-अपने आसनों से उठ गईं, क्योंकि अपने-अपने पति को देखना चाहती थीं, किन्तु स्त्री योचित लज्जा के कारण वे रुक गईं, लेकिन प्रबल उत्कंठा के कारण उन्होंने इस दुर्बलता की अवस्था पर काबू पा लिया और भगवान् का आलिंगन करने की भावना से अभिभूत हो गईं और इस विचार ने उन्हें अपने आस-पास के परिवेश से अचेत बना दिया। इस उत्कंठा की मूल दशा के कारण सारी औपचारिकताओं एवं सामाजिक रीति-रिवाजों का अन्त हो गया और इस तरह भगवान् के मिलन-पथ के सारे अवरोध दूर हो गये। आत्मा के प्रभु, श्रीकृष्ण के मिलन की यह चरम अवस्था है।

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना

दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ।

निरुद्धमप्यास्त्रवदम्बु नेत्रयो-

र्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥ ३२ ॥

**शब्दार्थ**

तम्—उस ( भगवान् ) को; आत्म-जैः—पुत्रों द्वारा; दृष्टिभिः—दृष्टि द्वारा; अन्तर-आत्मना—अन्तरात्मा से; दुरन्त-भावाः—दुर्लभ्य उत्कंठा; परिरेभिरे—आलिंगन किया; पतिम्—पति को; निरुद्धम्—अवरुद्ध; अपि—होते हुए; आस्त्रवत्—आँसू; अम्बु—जल

की बूँदों के समान; नेत्रयोः—आँखों से; विलज्जतीनाम्—लज्जा अनुभव करनेवाली; भृगु-वर्य—हे भृगुओं में श्रेष्ठ; वैक्लवात्—अनजाने।

रानियों की दुर्लघ्य उत्कण्ठा इतनी तीव्र थी कि लजाई होने के कारण उन्होंने सर्वप्रथम अपने अन्तरतम से भगवान् का आलिंगन किया, फिर उन्होंने दृष्टि से उनका आलिंगन किया और तब अपने पुत्रों को उनका आलिंगन करने के लिए भेजा ( जो खुद ही आलिंगन करने जैसा है )। लेकिन हे भृगुश्रेष्ठ, यद्यपि वे भावनाओं को रोकने का प्रयास कर रही थीं, किन्तु अनजाने उनके नेत्रों से अश्रु छलक आये।

तात्पर्य : यद्यपि स्त्रियोचित लज्जा के कारण अपने प्रिय पति भगवान् श्रीकृष्ण का आलिंगन करने में अनेक अवरोध थे, लेकिन उन्होंने भगवान् को देखकर, उन्हें अपने अन्तरतम में स्थापित करके तथा आलिंगन करने के लिए अपने पुत्र भेज करके, इसे पूरा कर लिया। लेकिन इस पर भी काम अधूरा ही रहा और अत्यन्त प्रयास करने पर भी उनकी आँखों से आँसू ढुलक आये। पुत्र को पिता का आलिंगन करने के लिए भेजना अप्रत्यक्ष रूप से पति का आलिंगन करने जैसा है, क्योंकि पुत्र माता के शरीर से ही विकसित होता है। पुत्र द्वारा आलिंगन पति-पत्नी द्वारा काम-भावना की दृष्टि से किये जानेवाले आलिंगन-जैसा नहीं होता, लेकिन यह आलिंगन वात्सल्य की दृष्टि से तृप्तिदायक होता है। युगल सम्बंधों में दृष्टि द्वारा आलिंगन अधिक प्रभावशाली होता है। अतएव श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, पति तथा पत्नी में इस प्रकार के भाव-विनिमय में कुछ भी गलत नहीं है।

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगत-

स्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ।

पदे पदे का विरमेत तत्पदा-

चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥

**शब्दार्थ**

यदि—यद्यपि; अपि—निश्चय ही; असौ—वे ( भगवान् श्रीकृष्ण ); पार्श्व-गतः—बगल में; रहः-गतः—अकेले; तथापि—फिर भी; तस्य—उसका; अङ्घ्रि-युगम्—भगवान् के चरण; नवम् नवम्—नये-नये; पदे—पग; पदे—पग पर; का—कौन; विरमेत—विलग किया जा सकता है; तत्-पदात्—उनके चरणों से; चलापि—गतिशील; यत्—जिसको; श्रीः—लक्ष्मी जी; न—कभी नहीं; जहाति—छोड़ती है; कर्हिचित्—कभी भी।

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण निरन्तर उनके पास थे और बिल्कुल अकेले भी थे, तो भी उनके चरण उन्हें नवीनतर लग रहे थे। यद्यपि लक्ष्मी जी स्वभाव से चंचल हैं, लेकिन वे भी भगवान् के

चरणों को नहीं छोड़ती थीं। तो भला जो स्त्री एक बार उन चरणों की शरण में जा चुकी हो, वह उनसे किस प्रकार विलग की जा सकती है?

**तात्पर्य :** बद्धजीव लक्ष्मीजी की कृपा के सदैव भूखे रहते हैं, यद्यपि स्वभाव से लक्ष्मीजी एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती रहती हैं। भौतिक जगत में कोई कितना ही चतुर क्यों न हो, वह स्थायी रूप से भाग्यशाली नहीं होता। संसार के विभिन्न भागों में न जाने कितने विशाल साम्राज्य हुए हैं, संसार में न जाने कितने शक्तिशाली राजा हुए हैं और न जाने कितने भाग्यशाली पुरुष हो चुके हैं, लेकिन क्रमशः उन सबका क्षय हुआ है। यही प्रकृति का नियम है, लेकिन आध्यात्मिकता में स्थिति भिन्न होती है। *ब्रह्म-संहिता* के अनुसार, भगवान् की सेवा में सैकड़ों-हजारों लक्ष्मियाँ अत्यन्त विनम्रतापूर्वक लगी रहती हैं। वे भगवान् के साथ सदैव एकान्त में होती हैं। तो भी भगवान् का सान्निध्य नित-नित इतना नवीन लगता है कि वे क्षण भर के लिए भी, भगवान् को नहीं छोड़ पाती हैं, यद्यपि वे स्वभाव से चंचल हैं और इधर-उधर विचरण करती रहती हैं। भगवान् के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध इतना जीवन्त होता है कि एक बार उनकी शरण में आ जाने पर भगवान् का संग नहीं छोड़ा जा सकता।

सारे जीव स्वभाव से स्त्रैण हैं। पुरुष या भोक्ता तो भगवान् हैं और उनकी विभिन्न शक्तियों की सारी अभिव्यक्तियाँ भी स्त्रैण हैं। *भगवद्गीता* में जीवों को *परा-प्रकृति* अर्थात् उच्चतर शक्ति की उपाधि से दी गइ है। भौतिक तत्त्व *अपरा-प्रकृति* या निकृष्ट शक्ति हैं। ऐसी शक्तियाँ भोक्ता की तुष्टि के लिए व्यवहार में लाइ जाती हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* (५.२९) में कहा गया है, परम भोक्ता तो स्वयं भगवान् हैं। अतएव जब शक्तियों को सीधे भगवान् की सेवा में लगाया जाता है, तो उन्हें असली रूप प्राप्त होता है और तब शक्ति तथा शक्तिमान में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

सामान्यतया किसी नौकरी में लगे लोग, सदैव राज्य या सरकार के परम भोक्ता के अधीन कोई पद चाहते हैं। चूँकि भगवान् इस ब्रह्माण्ड के भीतर या बाहर की प्रत्येक वस्तु के परम भोक्ता हैं, अतएव उनकी सेवा में लगना हर्ष का विषय है। एक बार भगवान् की परम सरकारी सेवा में लग जाने पर कोई भी जीव कभी उससे मुक्त होना नहीं चाहता। मनुष्य जीवन की सर्वोच्च सिद्धि भगवान् की परम सेवा में कोई कार्य प्राप्त करना है। इससे मनुष्य परम सुखी बनता है। तब उसे भगवान् से सम्बन्ध बनाए बिना चंचला लक्ष्मी को खोजने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मना-  
 मक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ।  
 विधाय वैरं श्वसनो यथानलं  
 मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥

### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; नृपाणाम्—राजाओं या प्रशासकों के; क्षिति-भार—पृथ्वी का बोझ; जन्मनाम्—इस प्रकार से उत्पन्न;  
 अक्षौहिणीभिः—घोड़ों, हाथियों, रथों तथा पैदल सेना शक्ति के द्वारा शक्ति-सम्पन्न; परिवृत्त—ऐसे परिवेश से गर्वित;  
 तेजसाम्—पराक्रम; विधाय—उत्पन्न करके; वैरम्—शत्रुता; श्वसनः—बाँसों के पौधों तथा वायु के घर्षण से; यथा—जिस  
 प्रकार; अनलम्—अग्नि; मिथः—एक दूसरे के साथ; वधेन—मारने से; उपरतः—छूटकर; निरायुधः—युद्ध में किसी का पक्ष न  
 करने से।

पृथ्वी पर भार-स्वरूप राजाओं को मारने के बाद, भगवान् को राहत हुई। वे अपनी सैन्य-  
 शक्ति, अपने घोड़ों, हाथियों, रथों, पैदल सेना के बल पर गर्वित थे। युद्ध में भगवान् किसी दल  
 में सम्मिलित नहीं हुए। उन्होंने बलशाली प्रशासकों में शत्रुता उत्पन्न की और वे आपस में लड़  
 गये। वे उस वायु के समान थे, जो बाँसों में घर्षण उत्पन्न करके आग लगा देती है।

तात्पर्य : जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, जीव उन वस्तुओं का वास्तविक भोक्ता नहीं होता, जो  
 भगवान् की सृष्टि के रूप में प्रकट होती हैं। भगवान् अपनी सृष्टि में प्रकट की गई प्रत्येक वस्तु के  
 असली स्वामी तथा भोक्ता हैं। दुर्भाग्यवश, माया के वश में आकर, जीव प्रकृति के गुणों के  
 आदेशानुसार मिथ्या भोक्ता बन जाता है। ईश्वर बनने की ऐसी मिथ्या भावना से गर्वित होकर मोहित  
 जीव अनेकानेक कार्यों के द्वारा अपनी भौतिक शक्ति बढ़ाता है और इस तरह पृथ्वी का बोझ बन जाता  
 है और यहाँ तक कि पृथ्वी भलेमानस के लिए रहने योग्य नहीं रह जाती। यह अवस्था धर्मस्य ग्लानि  
 अर्थात् मानव शक्ति का दुरुपयोग कहलाती है। जब इस प्रकार धर्म की ग्लानि प्रकट होने लगती है, तो  
 धर्मात्मा लोग, धरती के लिए भार-स्वरूप भ्रष्ट प्रशासकों द्वारा उत्पन्न विषम परिस्थिति में व्यग्र हो उठते  
 हैं और तब धर्मात्मा लोगों की रक्षा करने तथा संसार विभिन्न भागों के ऐसे प्रशासकों के भार को कम  
 करने के लिए भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति से अवतरित होते हैं। वे इन अवांछित प्रशासकों पर दया  
 नहीं दिखाते, अपितु अपनी शक्ति से वे उनके बीच शत्रुता उत्पन्न कर देते हैं, ठीक उसी तरह जिस  
 प्रकार वायु बाँसों की रगड़ से जंगल में अग्नि उत्पन्न कर देती है। यह अग्नि जंगल में स्वतः वायु के

प्रकोप से उत्पन्न होती है। इसी प्रकार राजनेताओं के विभिन्न समूहों में शत्रुता का प्रादुर्भाव भगवान् की अदृश्य योजना से होता है। ये अवांछित प्रशासक झूठी शक्ति तथा सैन्य-बल से गर्वित होकर, आदर्शवादी संघर्षों के लिए परस्पर युद्ध करने लगते हैं और अपनी सारी शक्ति का क्षय कर लेते हैं। विश्व का इतिहास भगवान् की इस इच्छाशक्ति को दर्शाता है और यह तब तक चलती रहेगी, जब तक सारे जीव भगवान् की सेवा में अनुरक्त नहीं हो जाते। *भगवद्गीता* (७.१४) में यह तथ्य अत्यन्त विशद रूप से वर्णित है, जिसमें कहा गया है, “माया मेरी शक्ति है इसलिए आश्रित जीवों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे भौतिक गुणों की शक्ति का अतिक्रमण कर सकें। किन्तु जो लोग मेरी (भगवान् श्रीकृष्ण की) शरण ग्रहण करते हैं, वे इस भौतिक शक्ति विशाल सागर को पार कर सकते हैं।” इसका अर्थ यह हुआ कि सकाम कर्म द्वारा या चिन्तन या आदर्शवाद द्वारा शान्ति तथा सम्पन्नता नहीं लाई जा सकती। इसका एकमात्र उपाय है परमेश्वर की शरण ग्रहण करना और माया के मोह से मुक्त हो लेना।

दुर्भाग्यवश जो लोग विध्वंसक कार्य में लगे हैं, वे भगवान् की शरण ग्रहण करने में अक्षम हैं। वे अव्वल दर्जे के मूर्ख हैं; वे मनुष्य योनि के निम्नतम स्तर पर गिरे हुए हैं; उनका सारा ज्ञान हर लिया गया होता है, यद्यपि बाहरी तौर पर शैक्षिक दृष्टि से वे पढ़े-लिखे लगते हैं। वे सारे आसुरी वृत्ति के होते हैं और सदैव ही भगवान् की परम शक्ति को ललकारते रहते हैं। जो अत्यधिक भौतिकतावादी हैं और भौतिक शक्ति एवं सत्ता के लिए लालायित रहते हैं, वे निस्सन्देह पहले दर्जे के मूर्ख हैं, क्योंकि उन्हें जीवंत शक्ति का कोई ज्ञान नहीं होता। वे सर्वोपरि अध्यात्म ज्ञान से अनजान होने के कारण भौतिक विज्ञान में मस्त रहते हैं, जिसका समापन शरीर के अन्त के साथ हो जाता है। वे निपट अधम मनुष्य होते हैं, क्योंकि मनुष्य जीवन तो विशेष रूप से भगवान् के साथ विस्मृत सम्बन्ध को पुनःस्थापित करने के निमित्त मिला है, किन्तु वे भौतिक कार्यकलापों में लगे रहने के कारण इस अवसर को खो देते हैं। उनकी बुद्धि मारी जाती है, क्योंकि दीर्घकालीन तर्क वितर्क के बाद भी वे उन भगवान् को नहीं जान पाते, जो प्रत्येक वस्तु के सार-सर्वस्व हैं। वे सारे के सारे आसुरी सिद्धान्त वाले होते हैं और वे उसी तरह अपने किये कर्मों का फल भोगते हैं, जिस तरह कि रावण, हिरण्यकशिपु, कंस तथा अन्य भौतिकतावादी शूरवीरों ने भोगा।

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ।

रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान् प्राकृतो यथा ॥ ३५ ॥

### शब्दार्थ

सः—वे ( पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ); एषः—ये सब; नर-लोके—इस मनुष्य-लोक में; अस्मिन्—इस; अवतीर्णः—अवतार लेकर; स्व—निजी, अन्तः; मायया—अहैतुकी कृपा से; रेमे—भोग किया; स्त्री-रत्न—वह स्त्री, जो भगवान् की पत्नी बनने के लिए उपयुक्त है; कूटस्थः—मध्य में; भगवान्—भगवान्; प्राकृतः—संसारी; यथा—जिस प्रकार ।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अहैतुकी कृपा से अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा इस लोक में प्रकट हुए और सुयोग्य स्त्रियों के साथ इस तरह भोग किया, मानो वे संसारी कार्यों में लगे हुए हों।

तात्पर्य : भगवान् ने विवाह किया और गृहस्थ की भाँति रहे। यह निश्चय ही संसारी कार्य जैसा है, किन्तु जब हम यह जान लेते हैं कि उन्होंने १६,१०८ पत्नियों से विवाह किया और वे उन सबों के साथ पृथक्-पृथक् महलों में रहते थे, तो यह निश्चित रूप से सांसारिकता नहीं रह जाती। अतएव भगवान् का अपनी सुयोग्य पत्नियों के साथ गृहस्थ के रूप में रहना कभी भी संसारी नहीं हैं और उन सबके साथ उनका व्यवहार कोई संसारी यौन-सम्बन्ध नहीं समझा जाना चाहिए। जो स्त्रियाँ उनकी पत्नी बनी थीं, वे भी सामान्य स्त्रियाँ नहीं थीं, क्योंकि भगवान् को पति-रूप में प्राप्त करना कोटि-कोटि जन्मों की तपस्या का परिणाम ही हो सकता है। जब भगवान् विभिन्न लोकों में या इस मनुष्यलोक में प्रकट होते हैं, तो वे बद्धजीवों को दिव्य लोक में अपना नित्य दास, मित्र, जननी, जनक तथा प्रियतम बनाने हेतु आकर्षित करने के लिए ही अपनी दिव्य लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं, जहाँ भगवान् नित्य सेवा-विनिमय का प्रतिदान करते हैं। इस भौतिक जगत में यह सेवा विकृत रूप में दिखती है और असमय ही छिन्न हो जाती है, जिससे बहुत ही कटु अनुभव होता है। मोहग्रस्त जीव, प्रकृति के द्वारा बद्ध होकर, अज्ञान के कारण समझ नहीं पाता कि हमारे यहाँ के सारे संसारी सम्बन्ध क्षणिक हैं और उन्माद से भरे हैं। ऐसे सम्बन्ध हमें निरन्तर सुखी नहीं रख सकते, किन्तु यदि यही सम्बन्ध भगवान् के साथ स्थापित किये जायें, तो हम इस भौतिक शरीर को त्यागने पर वैकुण्ठ चले जाते हैं और उनके साथ इच्छित शाश्वत सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। अतएव जिन स्त्रियों के बीच में वे पति-रूप में रह रहे थे, वे इस भौतिक जगत् की स्त्रियाँ न होकर उनकी दिव्य पत्नियाँ थीं और वे भक्तिमय सेवा की पूर्णता के द्वारा दिव्य पद प्राप्त कर चुकी थीं। यही उनकी योग्यता थी। भगवान्

परब्रह्म अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर हैं। बद्धजीव सर्वत्र ही शाश्वत सुख की खोज करते रहते हैं—न केवल इस धरा में, अपितु ब्रह्माण्ड के अन्य लोकों में भी—क्योंकि वैधानिक रूप से आध्यात्मिक स्फुलिंग होने के कारण, जीव ईश्वर की सृष्टि के कोने-कोने में विचरण कर सकता है। लेकिन भौतिक गुणों के द्वारा बद्ध होने से वह अन्तरिक्षयानों द्वारा आकाश में विचरण करना चाहता है और अपने गन्तव्य तक पहुँच पाने में असफल रहता है। गुरुत्वाकर्षण का नियम उसके लिए कैदी की जंजीरों के समान बाँधनेवाला है। वह अन्य विधियों से कहीं भी पहुँच सकता है, लेकिन चाहे वह सर्वोच्च लोक तक क्यों न पहुँच जाय, किन्तु उसे वह शाश्वत सुख नहीं मिल सकता, जिसकी खोज वह जन्म-जन्मांतर से करता रहता है। किन्तु जब वह होश सँभालता है, तो ब्रह्म-सुख की खोज यह जानते हुए करता है कि वह जिस असीम सुख की खोज कर रहा है, वह इस भौतिक जगत में कभी भी प्राप्त होनेवाला नहीं है। अतएव, सर्वोपरि व्यक्ति, परब्रह्म कभी भौतिक जगत में इस सुख की खोज नहीं करते। न ही उनकी सुख-सामग्री इस भौतिक जगत में मिल सकती है। वे निराकार नहीं हैं। चूँकि वे नायक हैं और असंख्य जीवों में सर्वोपरि व्यक्ति हैं, अतएव वे निराकार नहीं हो सकते। वे हमारी ही तरह हैं और उनमें समस्त व्यक्तिगत जीवों की सी प्रवृत्ति पूर्ण रूप में पायी जाती है। वे हमारी ही तरह विवाह करते हैं, किन्तु उनका विवाह न तो संसारी है, न हमारा बद्ध अवस्था के अनुभव से सीमित है। अतएव उनकी पत्नियाँ संसारी लगती तो हैं, किन्तु वास्तव में वे सब दिव्य मुक्तात्माएँ हैं, जो अन्तरंगा शक्ति की पूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं।

उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास-

व्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ।

सम्मुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता

यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥ ३६ ॥

**शब्दार्थ**

उद्दाम—अत्यन्त गम्भीर; भाव—भाव; पिशुन—उत्तेजक; अमल—निष्कलंक; वल्गु-हास—सुन्दर मुसकान; व्रीड—आँख की कोर; अवलोक—देखना, चितवन; निहतः—जीता गया; मदनः—कामदेव ( या अमदन; अपि—; यासाम्—; सम्मुह्य—; चापम्—; अजहात्—; प्रमद—; उत्तमाः—; ता—; यस्य—; इन्द्रियम्—; विमथितुम्—; कुहकैः—; न—; शेकुः—.

उद्दाम—अत्यन्त गम्भीर; भाव—भाव; पिशुन—उत्तेजक; अमल—निष्कलंक; वल्गु-हास—सुन्दर मुसकान; व्रीडा—आँख की कोर; अवलोक—देखना, चितवन; निहत:—जीता गया; मदन:—कामदेव ( या अमदन—सहिष्णु शिव ); अपि—भी; यासाम्—जिसका; सम्मुह्य—से विजित होकर; चापम्—धनुष; अजहात्—त्याग दिया; प्रमद—मादक बनानेवाली स्त्री; उत्तमा:—उच्च कोटि की; ता—वे सब; यस्य—जिसकी; इन्द्रियम्—इन्द्रियों को; विमथितुम्—विचलित करने के लिए; कुहकै:—हावभाव द्वारा; न—कभी नहीं; शोकु:—समर्थ।

यद्यपि रानियों की मृदु मुस्कानें तथा बाँकी चितवनें अत्यन्त विमल तथा उत्तेजक थीं, जिससे साक्षात् कामदेव भी मोहित होकर अपना धनुष त्यागने के लिए बाध्य हो सकते थे, यहाँ तक कि अत्यन्त सहिष्णु शिवजी भी उनके शिकार हो सकते थे, तो भी, वे अपने समस्त हाव-भाव तथा आकर्षण से भगवान् की इन्द्रियों को विचलित नहीं कर सकीं।

तात्पर्य : मोक्ष का पथ या भगवद्धाम वापस जाने का पथ सदैव स्त्री-संसर्ग का निषेध करता है और सारा सनातन धर्म या वर्णाश्रम-धर्म की सारी व्यवस्था स्त्री की संगति के लिए मना करते हैं या प्रतिबन्धित करते हैं। तो फिर जो व्यक्ति सोलह हजार से अधिक पत्नियों से अनुरक्त हो, उसे भगवान् कैसे मान लिया जाय? यह प्रश्न उन जिज्ञासुओं द्वारा उठाया जा सकता है, जो वास्तव में परमेश्वर की दिव्य प्रकृति को जानने के लिए उत्सुक हैं। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए ही नैमिषारण्य में मुनियों ने इस श्लोक में तथा अगले श्लोकों में भगवान् के दिव्य स्वभाव के विषय में विचार-विमर्श किया है। यहाँ यह स्पष्ट है कि स्त्रियों के आकर्षक हाव-भाव, जो कामदेव को या परम सहिष्णु पुरुष शिवजी को भी डिगा सकते हैं, वे भगवान् की इन्द्रियों को नहीं जीत सके। कामदेव का एकमात्र कार्य है संसारी काम-वासना को उद्दीपित करना। सारा ब्रह्माण्ड कामदेव के बाण से विचलित होकर गति कर रहा है। विश्व के सारे कार्य-कलाप, स्त्री तथा पुरुष के केन्द्रीय आकर्षण के कारण गतिशील हैं। पुरुष अपनी रुचि की सहचरी खोजता रहता है और स्त्री उपयुक्त पुरुष की तलाश में रहती है। भौतिक उत्तेजना की यही शैली है। और ज्योंही पुरुष का संयोग स्त्री से हो जाता है, त्योंही यौन-सम्बन्ध के द्वारा जीव दृढ़ भौतिक बन्धन में बँध जाता है। परिणाम यह होता है कि घर, मातृभूमि, सन्तान, समाज तथा मैत्री एवं सम्पत्ति-संग्रह के प्रति नर-नारी का आकर्षण उसके सम्भ्रान्त कार्यक्षेत्र बन जाते हैं और इस तरह नाशवान संसार के प्रति मिथ्या किन्तु अनथक आकर्षण प्रकट होता है। अतः जो लोग अपने घर अर्थात् भगवद्धाम वापस जाने के लिए मोक्षपथ पर अग्रसर हैं, विशेषकर उनके लिए शास्त्रों का आदेश है कि वे इस प्रकार के भौतिक आकर्षण के साज-समानों से बचे रहें। और ऐसा तभी सम्भव है, जब भगवद्भक्तों अर्थात् महात्माओं की संगति की जाय। कामदेव जीवों पर अपना बाण चलाकर उन्हें



विपरीत लिंग के पीछे पागल बनाता है, चाहे वह सुन्दर हो या न हो। कामदेव का प्रभाव उस बर्बर समाज में भी देखा जाता है, जो सभ्य राष्ट्रों की निगाहों में कुरूप हैं। इस तरह कामदेव का प्रभाव कुरूप से कुरूप रूपों में देखा जाता है, तो परम सुन्दरियों के लिए क्या कहा जाय? शिवजी भी, जिन्हें परम सहिष्णु समझा जाता है, कामदेव के बाण द्वारा आहत हुए, क्योंकि वे भगवान् के मोहनी अवतार के पीछे दीवाने हो गये थे और उन्होंने अपनी हार स्वीकार की थी। तो भी वही कामदेव लक्ष्मी के हाव-भाव तथा कटाक्षों से विमोहित हो गया और हताश स्थिति में उसने अपने धनुष-बाण को खुद ही त्याग दिया था। भगवान् कृष्ण की रानियों की सुन्दरता और उनका आकर्षण ऐसा था। फिर भी वे भगवान् की दिव्य इन्द्रियों को विचलित नहीं कर पाईं। इसका कारण यही है कि भगवान् पूर्ण *आत्माराम* हैं अर्थात् स्वयं-संतुष्ट हैं। उन्हें आत्मतुष्टि के लिए किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिये रानियाँ अपने स्त्रियोचित आकर्षण के द्वारा भगवान् को तुष्ट न होते देख, अपने *एकनिष्ठ स्नेह तथा सेवा से उन्हें तुष्ट कर सकीं*। वे मात्र अनन्य दिव्य प्रेमाभक्ति से ही भगवान् को प्रसन्न कर सकीं और भगवान् ने भी बदले में पत्नियों के रूप में उनके साथ व्यवहार किया। भगवान् ने केवल उनकी अनन्य सेवा से प्रसन्न होकर, पत्नीव्रत पति की भाँति उन्हें प्रतिदान किया। अन्यथा उन्हें इतनी सारी पत्नियों का पति बनने की क्या आवश्यकता थी? वे हर एक के स्वामी (पति) हैं, किन्तु जो उन्हें इस रूप में मानता है, वे उसके साथ वैसा ही प्रतिदान करते हैं। भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम की तुलना कभी संसारी कामवासना से नहीं की जानी चाहिए। यह नितान्त दिव्य है। रानियाँ भी जिस स्वाभाविक स्त्रियोचित ढंग से व्यवहार कर रही थीं, वह भी दिव्य था, क्योंकि वे अपने भावों को दिव्य आनन्दवश ही प्रकट कर रही थीं। पिछले श्लोक में यह बताया जा चुका है कि भगवान् एक संसारी पति जैसे प्रतीत हो रहे थे, लेकिन वास्तव में अपनी पत्नियों के साथ उनका यह सम्बन्ध दिव्य, शुद्ध तथा भौतिक प्रकृति के गुणों से मुक्त था।

तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् ।

आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥ ३७ ॥

### शब्दार्थ

तम्—भगवान् कृष्ण को; अयम्—ये सब ( सामान्य लोग ); मन्यते—मन में सोचते हैं; लोकः—बद्धजीव; हि—निश्चय ही; असङ्गम्—अनासक्त; अपि—के होते हुए; सङ्गिनम्—प्रभावित; आत्म—स्वयं; औपम्येन—अपने साथ तुलना करके; मनुजम्—सामान्य मनुष्य; व्यापृण्वानम्—लगे रहकर; यतः—क्योंकि; अबुधः—अज्ञान के कारण मूर्ख ।

सामान्य भौतिकतावादी बद्धजीव सोचते रहते हैं कि भगवान् उन्हीं में से एक हैं। अपने अज्ञान के कारण वे सोचते हैं कि पदार्थ का भगवान् पर प्रभाव पड़ता है, भले ही वे अनासक्त रहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर *अबुधः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। केवल अज्ञानवश, मूर्ख संसारी विवादक परमेश्वर को गलत समझते हैं और अबोध लोगों में प्रचार करके अपने मूर्खतापूर्ण विचारों को फैलाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं और जब वे साक्षात् सबों के समक्ष विद्यमान थे, तब उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पूर्ण दिव्य शक्ति का प्रदर्शन किया था। जैसाकि हम *श्रीमद्भागवत* के प्रथम श्लोक में ही स्पष्ट कर चुके हैं, भगवान् अपनी इच्छानुसार कुछ भी करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं, किन्तु उनके सारे कार्य शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द से परिपूर्ण होते हैं। केवल मूर्ख भौतिकतावादी उनके ज्ञान तथा आनन्द से परिपूर्ण शाश्वत रूप को न जानते हुए उन्हें गलत तरीके से समझते हैं, यद्यपि इसकी पुष्टि भगवद्गीता एवं उपनिषदों में हुई है। उनकी विविध शक्तियाँ पूर्णतया प्राकृतिक क्रम के अनुसार कार्य करती हैं और अपनी विभिन्न शक्तियों के माध्यम से सारे कार्य करते हुए वे निरन्तर परम स्वतंत्र रहते हैं। जब वे विभिन्न जीवों पर अपनी अहैतुकी कृपा करके भौतिक संसार में अवतरित होते हैं, तब वे अपनी निजी शक्ति से ही ऐसा करते हैं। वे किसी तरह भी प्रकृति के गुणों के अधीन नहीं होते और वे अपने मूल रूप में प्रकट होते हैं। मानसिक तर्कवादी उन्हें परम पुरुष के रूप में सही समझ नहीं पाते हैं और वे अव्यक्त ब्रह्मके निराकार पक्ष को ही सब कुछ मान लेते हैं। ऐसी धारणा बद्ध जीवन का ही परिणाम है, क्योंकि वे अपनी व्यक्तिगत क्षमता से आगे नहीं पहुँच पाते। अतएव जो भगवान् को अपनी सीमित शक्ति के स्तर पर समझता है, वह केवल सामान्य व्यक्ति होता है। ऐसे व्यक्ति को यह विश्वास कभी नहीं दिलाया जा सकता कि भगवान् प्रकृति के गुणों से किसी तरह प्रभावित नहीं होते। वह यह नहीं जान पाता कि सूर्य सदैव दूषित पदार्थ से अप्रभावित रहा करता है। मानसिक तर्कवादी सदैव अपने अनुभव के ज्ञान के आधार पर हर वस्तु को तोलते हैं। अतः जब भगवान् विवाह-बन्धन में सामान्य व्यक्ति की भाँति कर्म करते पाये जाते हैं, तो वे उन्हें अपने समान समझने लगते हैं और यह विचार नहीं करते कि भगवान् एकसाथ सोलह हजार या इससे भी अधिक पत्नियाँ से विवाह कर सकते हैं। अल्पज्ञान के कारण, वे चित्र के एक पक्ष को देखते हैं और दूसरे पक्ष

पर अविश्वास दिखाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अज्ञानवश ही वे कृष्ण को अपने समान मानते हैं और अपने निष्कर्ष निकालते हैं, जो *श्रीमद्भागवत* के मतानुसार निरर्थक तथा अप्रामाणिक होते हैं।

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।

न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥ ३८ ॥

### शब्दार्थ

एतत्—यह; ईशनम्—दिव्यता, भगवत्ता; ईशस्य—भगवान् की; प्रकृति-स्थः—प्रकृति के सम्पर्क में रहकर; अपि—भी; तद्-गुणैः—गुणों के द्वारा; न—कभी नहीं; युज्यते—प्रभावित होता है; सदा आत्म-स्थैः—शाश्वतता में स्थित रहनेवालों के द्वारा; यथा—जैसा है; बुद्धिः—बुद्धि; तत्—भगवान्; आश्रया—शरणागत।

यह तो भगवान् की अलौकिकता है कि वे भौतिक प्रकृति के गुणों के संसर्ग में रहते हुए भी उनसे प्रभावित नहीं होते। इसी प्रकार जिन भक्तों ने भगवान् की शरण ग्रहण कर ली है, वे भी भौतिक गुणों से प्रभावित नहीं होते।

तात्पर्य : वेदों तथा वैदिक ग्रंथों (श्रुति तथा स्मृति) में पुष्टि की गई है कि दिव्यता में लेशमात्र भौतिकता नहीं होती। भगवान् दिव्य (*निर्गुण*) ही होते हैं—परम ज्ञानमय होते हैं। हरि या भगवान् परम दिव्य पुरुष हैं, जो भौतिक प्रभाव की परिधि के बाहर स्थित होते हैं। इन तथ्यों की पुष्टि आचार्य शंकर द्वारा भी हुई है। कोई यह तर्क कर सकता है कि लक्ष्मीदेवी के साथ उनका सम्बन्ध दिव्य हो सकता है, लेकिन जिस यदुवंश में वे उत्पन्न हुए थे, उसके साथ या जरासंध तथा भौतिक गुणों से लिप्त रहने वाले अन्य असुरों के साथ, उनका ऐसा सम्बन्ध कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यही है कि किसी भी दशा में भगवान् की भगवत्ता (दिव्यता) कभी भी प्रकृति के गुणों के सम्पर्क में नहीं आती। वस्तुतः वे ऐसे गुणों के सम्पर्क में इसलिए लगते हैं, क्योंकि वे ही हर वस्तु के परम उद्गम हैं। तो भी वे ऐसे गुणकर्मों से ऊपर रहते हैं। इसीलिए वे योगेश्वर कहलाते हैं, अर्थात् दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो वे सर्वशक्तिमान हैं। यहाँ तक कि उनके विद्वान भक्त भी भौतिक गुणों से प्रभावित नहीं होते। वृन्दावन के छः महान् गोस्वामी अत्यन्त सम्पन्न एवं राजसी परिवारों के थे, किन्तु जब वे वृन्दावन में सन्त जीवन बिताने लगे, तो भले ही ऊपरी तौर से उनकी दशा दारुण रही हो, किन्तु वास्तव में वे आध्यात्मिक मूल्यों की दृष्टि से सर्वाधिक सुसम्पन्न थे। ऐसे महाभागवत अर्थात् प्रथम कोटी के भक्त मनुष्यों के बीच विचरण करते हुए भी, प्रकृति के तीन गुणों से उत्पन्न मान या अपमान, भूख या तृप्ति, निद्रा या जागरण

से कलुषित नहीं होते। इसी प्रकार उनमें से कुछ सांसारिक आचरण में रहकर भी उससे अप्रभावित बने रहते हैं। जब तक जीवन में ये उदासीनताएँ नहीं होतीं, तब तक कोई अध्यात्म में स्थित नहीं माना जाता। दिव्यता तथा भगवान् के पार्षद एक ही आध्यात्मिक धरातल पर रहते हैं और उनकी महिमा सदा ही योगमाया अर्थात् भगवान् की अन्तरंगा शक्ति के कर्म द्वारा पुनीत होती रहती है। भगवान् के भक्त सदैव दिव्य होते हैं, भले ही कभी-कभी उनके आचरण का पतन होता दिखता हो। भगवान् भगवद्गीता (९.३०) में बलपूर्वक घोषित करते हैं कि यदि पूर्व कल्मष के कारण कोई भक्त पतित हो भी जाय, तो भी उस भक्त को भगवद्भक्ति में पूर्ण रूप से प्रवृत्त रहने के कारण पूर्णतया दिव्य मानना चाहिए। भगवान् उसके द्वारा सेवा करते रहने के कारण उसकी सदैव रक्षा करते हैं, और उसकी पतित अवस्थाओं को आकस्मिक तथा क्षणिक मानना चाहिए। वे देखते ही देखते छूमन्तर हो जाएँगी।

तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः ।  
अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥ ३९ ॥

### शब्दार्थ

तम्—श्रीकृष्ण को; मेनिरे—मान बैठते हैं; अबलाः—सुकुमार; मूढाः—सरलता के कारण; स्त्रैणम्—स्त्री के अधीन; च—भी; अनुव्रतम्—पालनकर्ता; रहः—एकान्त स्थान; अप्रमाण-विदः—महिमा से अनजान; भर्तुः—अपने पति की; ईश्वरम्—परम नियन्ता को; मतयः—मत; यथा—जैसे।

वे सरल तथा सुकोमल स्त्रियाँ सचमुच ही सोच बैठीं कि उनके प्रिय पति, भगवान् श्रीकृष्ण, उनसे आकर्षित हैं और उनके वशीभूत हैं। वे अपने पति की महिमाओं से उसी तरह अनजान थीं, जिस प्रकार नास्तिक लोग परम नियन्ता के रूप में भगवान् से अनजान रहते हैं।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य पत्नियाँ तक भगवान् की अगाध महिमा को पूर्णतया जानती न थीं। यह अज्ञान सांसारिक नहीं है, क्योंकि भगवान् तथा उनके नित्य पार्षदों के मध्य भावों के आदान-प्रदान में भगवान् की अन्तरंगा शक्ति का कुछ न कुछ हाथ रहता है। भगवान् पाँच प्रकार से दिव्य सम्बन्धों अर्थात् ईश्वर, स्वामी, मित्र, पुत्र, प्रेमी भाव का आदान-प्रदान करते हैं और इन प्रत्येक लीलाओं में वे पूर्णतया अपनी अन्तरंगा शक्ति योगमाया द्वारा क्रीड़ा करते हैं। वे गोपों से या अर्जुन जैसे मित्रों के साथ समान स्तर के सखा की भाँति क्रीड़ा करते हैं। माता यशोदा के सामने वे सचमुच के पुत्र के रूप में क्रीड़ा करते हैं। गोपियों के समक्ष वे असली प्रेमी के रूप में और द्वारका की रानियों के

समक्ष साक्षात् पति-रूप में क्रीड़ा करते हैं। भगवान् के ऐसे भक्त कभी भी भगवान् को परमेश्वर के रूप में नहीं सोचते, अपितु सामान्य मित्र, प्रिय पुत्र, या प्रेमी या पति के रूप में सोचते हैं, जो हृदय और आत्मा को बहुत प्रिय हैं। भगवान् तथा उनके उन दिव्य भक्तों के मध्य यही सम्बन्ध होता है, जो चिन्मय आकाश में भगवान् के पार्षद के रूप में कार्य करते हैं, जहाँ अनेक वैकुण्ठ लोक स्थित हैं। जब भगवान् अवतरित होते हैं, तो वे दिव्य जगत की पूरी तस्वीर दिखाने के लिए अपने पार्षदों सहित अवतरित होते हैं, जहाँ भगवान् की सृष्टि के ऊपर किसी प्रकार का प्रभुत्व जताने का कोई नाम भी नहीं लेता और जहाँ भगवान् के प्रति शुद्ध प्रेम तथा भक्ति का ही प्राधान्य रहता है। ऐसे भगवद्-भक्त मुक्तात्मा होते हैं। वे बहिरंगा शक्ति के प्रभाव का निषेध करनेवाली तटस्था या अन्तरंगा शक्ति की पूर्ण अभिव्यक्ति होते हैं। भगवान् की अन्तरंगा शक्ति ने भगवान् कृष्ण की पत्नियों को भगवान् की अगाध महिमाओं को भुलवा दिया, जिससे आदान-प्रदान में कोई त्रुटि न रह जाये और वे यह मान बैठीं कि भगवान् उनके वश में रहनेवाले पति तथा सदैव एकान्त स्थान में उनके पीछे-पीछे जाने वाले पति हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् के निजी पार्षद तक भगवान् को भलीभाँति नहीं जान पाते, अतएव शोधार्थी लेखक अथवा मानसिक तर्कबाज भगवान् की दिव्य महिमाओं के विषय में भला क्या जान सकेंगे? मानसिक तर्कबाज विभिन्न मतों के विषय में अपने विचार प्रकट करते हैं—कि वे सृष्टि के कारण हैं, सृष्टि के अवयव-स्वरूप हैं या सृष्टि के भौतिक तथा सक्षम कारण हैं—किन्तु यह तो भगवान्-विषयक केवल अधूरा ज्ञान है। वास्तव में वे सामान्य मनुष्य की ही तरह अनजान रहते हैं। भगवान् को केवल भगवान् की कृपा से ही जाना जा सकता है, अन्य किसी साधन से नहीं। चूँकि अपनी पत्नियों के साथ भगवान् के सारे आचरण शुद्ध दिव्य प्रेम तथा भक्ति पर आधारित हैं, अतएव सारी पत्नियाँ किसी भौतिक कल्मषरहित दिव्य पद पर आसीन हैं।

*इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के अन्तर्गत “भगवान् कृष्ण का द्वारका में प्रवेश” नामक ग्यारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।*